

बुनियादी - शिक्षक

अंक ३

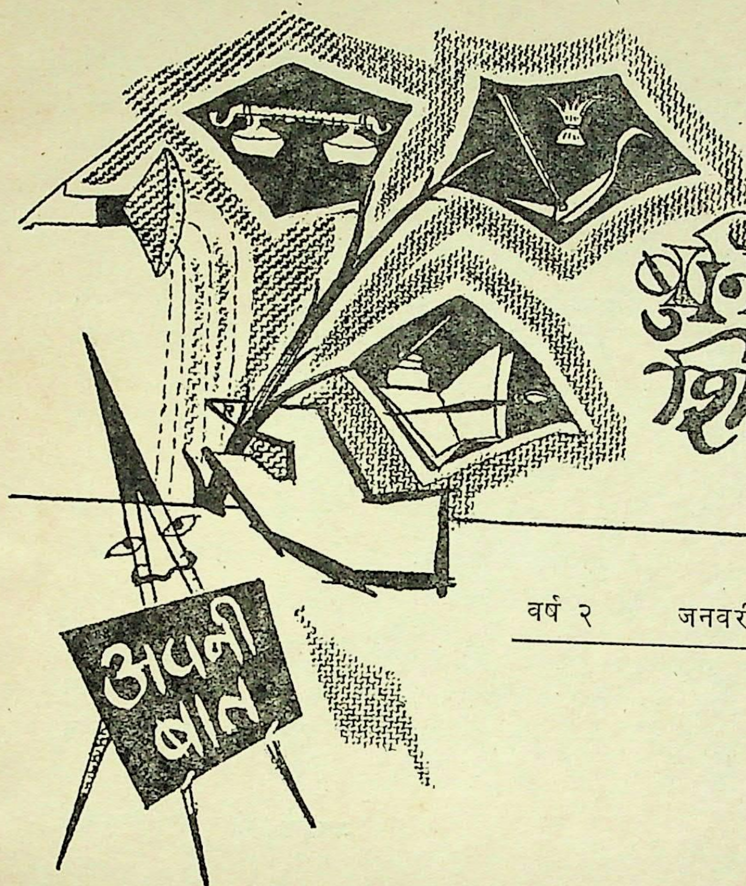
१९६३

इस अंक के आकर्षण

प्रकाशक :

बुनियादी साहित्य प्रकाशन

ल ख न ऊ



बुनियादी शिक्षक

वर्ष २ जनवरी १९६३ अंक १

मानव के लिए ही नहीं, वरन् पशु-पक्षियों के लिए भी प्रशिक्षण एक अनिवार्य आवश्यकता है। आपने पिल्लों की भाग-दौड़ जरूर देखी होगी। उनकी यह भाग-दौड़ निरुद्देश्य और निष्प्रयोजन नहीं होती; बल्कि उसके पीछे उनकी वयस्कता की तैयारी, जो उनके भावी शिकारी जीवन के लिए अपेक्षित होती है, छिपी रहती है।

बिल्ली के छोटे-छोटे बच्चे गेंद के पीछे उछल-कूद मचाते हैं। ऐसा क्यों? इसीलिए कि वे चूहों के शिकार का पूर्वाभ्यास करते हैं। इसी तरह अन्य पशु-पक्षियों को भी अपने बच्चों को जीवन की क्रियाशीलताओं का पाठ पढ़ाते आप देख सकते हैं। इस प्रकार प्रशिक्षण का उद्देश्य जीवन की क्रियाशीलताओं के प्रति जागरूक करना है। इस ध्येय की सन्तोष-प्रद पूर्ति हो, इसके लिए हमें अपने जीवन के ध्येयों के प्रति स्पष्ट होने की पूर्णतया आवश्यकता हैं। हमें विश्वास है कि बुनियादी शिक्षक इस दिशा में समाज की सजगता पूर्वक सेवाएँ कर सकेगा।

यहाँ हम इतना और स्पष्ट कर देना अनुचित नहीं समझते कि पिछले अँकों के माध्यम से हम जो कुछ देना चाहते थे, नहीं दे पाये हैं। इसके पिछले दो अँक और इस तीसरे अँक में भी बुनियादी शिक्षा के सैद्धान्तिक पहलुओं पर ही विशेष बल देने का प्रयास कर पाये हैं।

अगले अँकों में हम शिक्षण के व्यावहारिक अँगों पर आदर्श परिचर्याएँ और विषयगत सँकेत पाठ आदि आपके सामने रखने का प्रयास करना चाहते हैं।

प्राइमरी और जूनियर हाईस्कूलों के शिक्षकों के लिए स्वस्थ मार्ग दर्शन का अभाव, चर्चा का विषय रहा है। पुस्तकालय की सीमित पुस्तकें इनकी आवश्यकताओं की आंशिक पूर्ति भी नहीं कर पातीं, यह सब को मालूम है। हम इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक युग से गुज़र रहे हैं। आज के द्रुतगति से होनेवाले वैज्ञानिक परिवर्तनों का हमारे शिक्षण से क्या सम्बन्ध है, इस विषय में अध्यापक समाज बहुत हद तक ना जानकार बना रहता है।

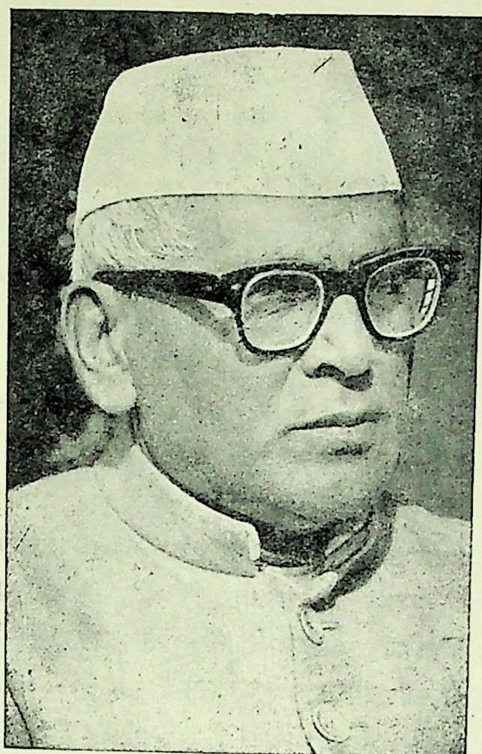
हमें विश्वास है कि नित नयी परिवर्तित भावभूमि की सही सूचना एवँ उनकी छाया में चिन्तन-मनन का स्वस्थ सँकेत बुनियादी शिक्षक सदैव सतर्कता पूर्वक देते रहने का प्रयास करेगा।

साथ ही हम अपने सहृदय पाठकों से अपेक्षा रखते हैं कि वे अपने बहुमूल्य सुझावों और सम्मतियों को बराबर भेजते रहने की कृपा करेंगे; ताकि हम उनके आधार पर चिन्तन कर सकें और बुनियादी शिक्षक को पूर्णरूपेण उपयोगी बनाने की दिशा में तेजी से कदम बढ़ा सकें।

आशीर्वाद भी कामना के साथ।

माननीय चन्द्रभान गुप्त, मुख्य मंत्री,

की सम्मति

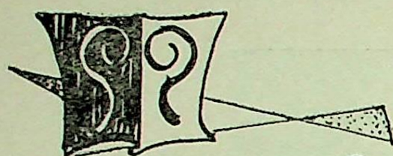


'बुनियादी शिक्षक' नामक मासिक पत्रिका का अंक देखने को मिला प्रसन्नता हुई। इस समय हमारे देश में करीब-करीब सभी राज्यों में बुनियादी शिक्षा का प्रयोग चल रहा है। देश के विद्‌तजन शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए प्रयत्नशील हैं। बुनियादी शिक्षक के द्वारा बेसिक प्राइमरी स्कूलों के अध्यापकों को उनके शिक्षण में सहायता मिल सकती है, ऐसी मेरी धारणा है।

मुझे आशा है यह पत्रिका बुनियादी शिक्षा के विषय में अध्यापकों एवं अभिभावकों को जानकारी कराते हुए अपने उद्देश्य में सफल होगी।

२७--१२--६२

चन्द्रभान गुप्त



समवाय क्यों और कैसे?

त्रिलोकीनाथ अग्रवाल

समवाय का विषय जितना ही गम्भीर है उतना ही संश्लिष्ट भी; इसकी गम्भीरता तो एक निर्विवाद सत्य है; किन्तु इसकी संश्लिष्टता के विषय में कहा जा सकता है कि बहुत हद तक काल्पनिक एवं भ्रमात्मक है। प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक ने अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर समवाय के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने के अतिरिक्त, भूगोल के साथ अन्य विषयों की सामवायिक सम्भावनाओं को सफलतापूर्वक व्यक्त किया है। —सम्पादक

बालकों का सर्वांगीण विकास ही शिक्षण का चरम लक्ष्य है और इसकी उपलब्धि के माध्यम हैं विभिन्न विषय। वैसे तो ऊपर से पाठ्यक्रम के अनुसार विषयों का वर्गीकरण अलगाव प्रकट करता है; किन्तु वास्तव में प्रत्येक विषय एक दूसरे से सम्बद्ध होता है; क्योंकि सभी विषय एक ही मूल ज्ञान से उत्पन्न हुए हैं।

वास्तव में यह देखा जाता है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक वस्तु का दूसरी वस्तु से घनिष्ट सम्बन्ध है। इसी सम्बन्ध के आधार पर मानव और प्रकृति ने एक दूसरे को सहयोग दे करके अपने-अपने क्षेत्र में एक दूसरे को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया है। यद्यपि यह तथ्य एक कठोर सत्य है फिर भी मानव और प्रकृति के इस सहकार को हम साधारणतः जीवन में अनुभव नहीं करते हैं; परन्तु जब किसी भी स्थान के भौगोलिक सम्बन्धों और मानव की प्रगति के विषय में चिन्तन करते हैं तो यह सहकार स्पष्ट रूप से सामने आ जाता है। जैसे पहाड़ी क्षेत्र के निवासी नाटे, हृष्ट-पुष्ट और परिश्रमी होते हैं, समुद्र के किनारे रहने वाले कुशल नाविक होते हैं। उर्वर मैदानों के निवासी औरों की अपेक्षा आलसी होते हैं। यहीं तक नहीं मनुष्य के आहार-विहार, भोजन-वस्तु और रहन-सहन सब पर भौगोलिक स्थिति का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

आप जानते हैं कि मैदानों के निवासी अधिक सम्पन्न एवं उन्नतिशील होते हैं क्योंकि खेती, व्यापार, उद्योग, और यातायात की सुविधाएँ उन्हें पूर्ण रूप से प्रकृति द्वारा प्राप्त होती हैं; परन्तु पहाड़ी क्षेत्रों के निवासियों को यह सुविधाएँ प्राप्त नहीं हो पातीं । इस प्रकार प्रकृति और मानव का अभिन्न सहकार है । जहाँ पर मानव नहीं रहता, वहाँ पर प्रकृति का भी कोई महत्व नहीं जैसे—भूमध्यरेखीय बनों में ऊँचे-ऊँचे पर्वत, भयंकर घाटियाँ और सीमाहीन रेगिस्तान । इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे दैनिक जीवन में प्रकृति और मानव का अटूट सम्बन्ध है ।

अगर हम अपने शरीर के आवयिक सम्बन्धों की ओर ध्यान दें तो इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि उन सब का एक दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध है । शरीर का एक भाग स्वतन्त्र रूप से कोई महत्व नहीं रखता । उसका महत्व शरीर के अन्य भागों के साथ मिल कर कार्य करने पर ही है । इसी प्रकार का सम्बन्ध शिक्षण के क्षेत्र में भी विभिन्न विषयों का आपस में है । जिस प्रकार एक वीज से पेड़ का सम्बन्ध होता है, पेड़ से उसकी भिन्न-भिन्न शाखाएँ होती हैं । ये भिन्न-भिन्न शाखाएँ देखने में अलग-अलग होती हैं; परन्तु इन सबका सम्बन्ध उस बीज से है, जिससे यह शाखाएँ उत्पन्न हुई हैं ।

इसलिए पढ़ते समय कभी भी किसी विशेष विषय को अधिक महत्व नहीं देना चाहिए । प्रशिक्षण केन्द्रों में जब कोई नया पाठ बच्चों से पढ़ाया जाता है तो उनके पूर्व ज्ञान सम्बन्धी प्रश्न किये जाते हैं । यह पूर्व ज्ञान किसी विषय विशेष का न होकर समाज और अन्य विषयों के अध्यापन पर आधारित होता है । पूर्व ज्ञान के आधार पर ही नये ज्ञान की बुनियाद रखकर शिक्षक बच्चों का ध्यान पाठ की ओर आकृष्ट करने में सफल होता है और नयी जानकारी सफलता पूर्वक पाता है बालक पूर्व ज्ञान के प्रश्नों के उत्तर देते-देते किसी नयी समस्या में उलझ जाते हैं और उस समस्या का समाधान जिज्ञासा-पूर्वक जानने के लिए अपनी उत्कटता दिखाते हैं । यही अवसर होता है, जब बालक सरलता से नवीन ज्ञान को ग्रहण करते हैं ।

मेरा ऐसा व्यक्तिगत अनुभव है कि प्रशिक्षण केन्द्रों में जिन पाठ योजनाओं में अध्यापकों ने प्रश्न भली प्रकार बालकों के पूर्व ज्ञान के स्तर पर किये हैं, वे अपना पाठ पढ़ाने में पूर्णतया सफल हुए हैं, क्योंकि उनके प्रश्न बच्चों के ज्ञान के स्तर के अनुकूल होते हैं । इस प्रकार किसी भी विषय को पढ़ाते समय अन्य विषयों के ज्ञान का उपयोग भलीभाँति किया जाता है । यह आवश्यक है कि एक विषय का दूसरे विषय को पढ़ाते समय सम्बन्ध स्थापित किया जाय; क्योंकि कोई भी विषय अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के आधार पर नहीं पढ़ाया जा सकता ।

विद्यालयों में विषयों का अलग-अलग श्रेणी में करना ही अस्वाभाविक और अनुचित होगा । विषय के प्रकरण का सम्बन्ध उसी विषय के दूसरे प्रकरणों से होता है जैसे—भूगोल

पढ़ाते समय जलवायु का सम्बन्ध प्राकृतिक स्थिति से होता है। अर्थात भारत में पश्चिमी किनारों पर गरमियों में अपेक्षाकृत पूर्वी किनारे के वर्षा होती है। इसका सम्बन्ध वहाँ की प्राकृतिक स्थिति से है। इसी प्रकार कहीं गेहूँ अधिक उत्पन्न होता है तो कहीं न्यूनमात्रा में लेकिन यदि इस तथ्य पर विचार किया जाय तो वहाँ की जलवायु और मिट्टी पर भी विचार करना होगा। इसी प्रकार अन्य विषयों में भी विषय के अन्तर्गत ही अभिन्न सहकार होता है। जैसे—भाषा में गद्य का सम्बन्ध व्याकरण से, निबन्ध का सम्बन्ध गद्य से है। अगर इसी प्रकार अन्य विषयों पर भी दृष्टि डालें तो इस प्रकार का सम्बन्ध पग-पग पर ज्ञात होगा जैसे—भूगोल का सम्बन्ध इतिहास, विज्ञान, भाषा, ड्राइंग, गणित और कृषि आदि सभी विषयों से है।

अनुबन्ध की आवश्यकता क्यों ?

आज विद्यालयों में भिन्न-भिन्न विषय पढ़ाये जाते हैं। मेरा ऐसा अनुभव है कि छोटे-छोटे बालकों को इतने अधिक विषय पढ़ने पड़ते हैं कि उन पर और पढ़ाने वालों पर तरस आये बिना नहीं रहता। इतना ही नहीं, मुझे कभी-कभी बड़ी दया आती है कि जब छोटे-छोटे बच्चे बहुत-सी पुस्तकें अपने बस्तों में रख कर स्कूल जाते हैं और शाम को उसी बोझ से दबे, थके-माँदे घर आते हैं। छोटे बच्चों के पाठ्यक्रम को ही क्यों कहा जाय, जूनियर हाईस्कूलों के बच्चों की दशा इससे भिन्न नहीं। यही दशा अन्य ऊँची कक्षाओं की भी है। हमें आश्चर्य तो तब होता है जब इन विद्यालयों में एक विषय का अध्यापक अपने को दूसरे विषय के अध्यापक से श्रेष्ठ समझता है।

आज के स्वतन्त्र भारत में कहने को ही सही, अँग्रेजी का महत्व कुछ कम तो हो ही गया है। नहीं तो पहले अँग्रेजी के अध्यापक अपने अन्य विषयों के अध्यापकों से श्रेष्ठ समझते थे। इसी प्रकार आज इस विज्ञान के युग में विज्ञान का अधिक महत्व है; परन्तु क्या विज्ञान का अध्ययन-अध्यापन बिना भाषा, ड्राइंग, गणित, भूगोल और इतिहास की सहायता से किया जा सकता है ? नहीं, कभी नहीं। मेरे इस विचार से आप भी सहमत हुए बिना नहीं रह सकते; क्योंकि बिना भाषा का अध्ययन किये बालक किसी भी कक्षा में विज्ञान का अध्ययन कैसे करेगा ? इसी तरह ड्राइंग का ज्ञान विज्ञान के अध्ययन के लिए आश्चर्यजनक प्रतीत होगा; परन्तु ऐसी बात नहीं है। मैं सोचता हूं—विज्ञान ड्राइंग के घन्टे में विद्यार्थी पेन्सिल और रबर के उपयोग के द्वारा रेखाचित्र खींचकर सीखता है। इसी ड्राइग का ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धित रेखा-चित्रों के बनाने में उपयोग होता है—जैसे बीकर, थर्मामीटर इत्यादि का रेखाचित्र बनाना।

मैं तो यहां तक कह सकता हूँ कि विषयों का अभिन्न सहकार स्थापित कर दिया जाय और उसका वास्तविक उपयोग क्रियात्मक रूप में किया जाय तो बालक किसी भी विषय के ज्ञान को एक दूसरे के सम्बन्ध के द्वारा शीघ्र प्राप्त कर लेगा जैसे ड्राइंग के घन्टे में विज्ञान,

भूगोल, भाषा सम्बन्धी रेखा-चित्र खिचवाये जाँय। जैसे भारतवर्ष का नक्शा खिचवाना। नक्शे का रेखा-चित्र ड्राइंग के घन्टे में ड्राइंग मास्टर के सहयोग से भली प्रकार सीखा जा सकता है और भूगोल में पैदावार, शहर आदि दिखाने के लिए इसका उपयोग सभी प्रकार किया जा सकता है।

अनुबन्ध की अनिवार्यता क्यों ?

१—पाठ्य-क्रम की अधिकता को समाप्त करना

जैसा कि मैंने ऊपर संकेत किया है कि बालकों को बहुत विषय पढ़ने पड़ते हैं। उनको इन अधिक विषयों से छुटकारा पाने के लिए यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों को अभिन्न सहकार के अनुसार ज्ञान दिया जाय, जिससे विद्यार्थी भी ज्ञान को सरलता से प्राप्त कर सके और उसको ज्ञान भार-स्वरूप न प्रतीत हो। मेरा अपना अनुभव है कि छोटे-छोटे विद्यार्थियों को बड़ी प्रसन्नता होती है जब किसी एक विषय का उत्तर, दूसरे विषय में देते हैं। इसी प्रकार समय सारिणी में परिवर्तन हो सकता है। विद्यार्थी को कम विषय पढ़ने पड़ेगें; परन्तु ज्ञान उन सभी विषयों का प्राप्त बालक कर लेगा। उसे परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए कम विषयों में परीक्षा देनी होगी। विद्यार्थियों को ही नहीं; अध्यापकों को भी कम विषय पढ़ाने पड़ेगें और एक विषय के ज्ञान के आधार पर दूसरे विषय के ज्ञान को सरलता से दिया जा सकेगा। जैसे—भाषा की पुस्तक में उन्हीं पाठों को सम्मिलित किया जाना चाहिए, जिनको दूसरे विषयों की पाठ्य-वस्तु प्राप्त हो। जिसका फल यह होगा कि कृषि विज्ञान, और भूगोल आदि के सम्बन्ध में विद्यार्थी भाषा पढ़ते समय ही अप्रत्यक्ष रूप से पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेंगे।

२—अस्वाभाविकता को दूर करना

विद्यार्थियों को ज्ञान सह-सम्बन्ध के आधार पर दिया जायगा तो उनके सामने किसी एक विषय की महता न होकर, प्रत्येक विषय की महत्ता समान रूप से होगी। प्रायः देखने में आता है कि विद्यालयों में प्रत्येक विषय का अध्यापक विषय को विशेष महत्व देता है। इस प्रकार उसका स्वयं का विचार संकुचित तो होता ही है, उसका प्रभाव विद्यार्थियों पर उनकी रुचि के अनुसार दृष्टिगोचर होता है; किन्तु यह मनोवैज्ञानिक आधार पर उचित नहीं है।

३—एकता में विभिन्नता

विद्यार्थियों को समन्वय के द्वारा ज्ञान देने से यह प्रतीत हो सकता है कि ज्ञान मूल-रूप में एक है; परन्तु भिन्न-भिन्न विषय उसी ज्ञान के आधार हैं। वे अनुभव करेगें कि एकता में विभिन्नता है। जैसे—सभी मनुष्य एक प्रकार के होते हैं, फिर भी प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे से कुछ इस तरह भिन्न होता है कि हम एक को दूसरे से भिन्न पाते हैं और उसी के अनुसार पहचान लेते हैं। जहाँ तक मेरा अनुभव है कि जुड़वाँ बच्चे भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं;

अन्यथा उनका पहचानना कठिन होता। इसी प्रकार अगर हम प्रकृति का निरीक्षण करें तो देखेगें कि एक छोटे से बीज में से कितना बड़ा पौधा या पेड़ उत्पन्न होता है। प्रत्येक पेड़ में फल-फूल, जड़ और तना होता हैं; परन्तु एक प्रकार के पेड़ में एक ही प्रकार के फल उत्पन्न होते हैं, और उनको हम उनके फलों के स्वाद या उनकी शक्ल से पहिचानते हैं। जैसे—आम। आम एक फल का नाम है; परन्तु इस आम की कितनी ही किस्में होती हैं। जैसे लँगड़ा, कलमी, देशी, मलिहाबादी और बम्बई आदि। जिस प्रकार फलों में एकता होते हुए भी भिन्नता होती है उसी प्रकार जब हम किसी भी भाव को भौगोलिक शब्दों में व्यक्त करते हैं तो वह शब्द एक पूरे क्षेत्र के लिए होता है; परन्तु उसमें विभिन्नता होती है जैसे जंगल वाले। इसका अर्थ होता है—वह क्षेत्र जहाँ पेड़ ही पेड़ हों; परन्तु यह पेड़ विभिन्न प्रकार के होते हैं जैसे—पीपल, नीम बबूल आदि।

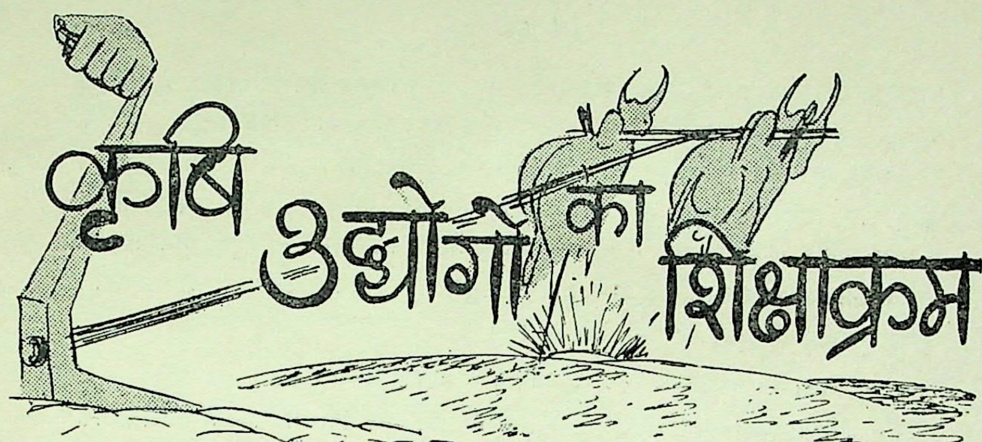
४—सर्वांगीण विकास

विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास के लिए यह आवश्यक है कि सब विषयों का एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित हो, जिससे प्रत्येक विद्यार्थी यह समझ सके कि जीवन में प्रत्येक वस्तु का महत्व है। आज हमारे देश के विद्यार्थी स्वास्थ्य की ओर ध्यान न देकर विद्या की ओर अधिक ध्यान देते हैं। इसके साथ-साथ उनके सामने आध्यात्मिक ज्ञान का कोई मूल्य नहीं होता। वे किसी न किसी प्रकार अपने स्वार्थ को सिद्ध करना ही अपना ध्येय समझते हैं। मैं पत्रिकाओं में प्रायः पढ़ता हूं कि विद्यार्थियों को परीक्षा केन्द्रों में अनुकरण करने से निरीक्षक ने रोका तो छुरा दिखा कर निरीक्षक को डराने का प्रयत्न किया। यह सब क्यों? केवल इस लिए न कि उन्हें किसी न किसी प्रकार परीक्षा में उत्तीर्ण होना है। उनके सामने अपने अध्यापक का आदर और स्वयं के चरित्र का मूल्य कुछ नहीं है इसलिए शिक्षा का महत्व केवल ज्ञान ही तक सीमित नहीं है बल्कि उसका उद्देश्य एक सुयोग्य नागरिक बनाना भी है। अगर हम बालक का सर्वांगीण विकास करना चाहते हैं तो उसका सम्बन्ध व्यावहारिक जीवन से होना ही चाहिए जिससे वह नैतिकता और सामाजिक जीवन की उपयोगिता समझ सके।

५—समय का सदुपयोग

सामाजिक पद्धति पर ज्ञान देने से समय की बचत होती है और विद्यार्थियों में ज्ञान प्राप्त करने के लिए जिज्ञासा उत्पन्न होती है। अगर इस प्रकार बचे हुए समय का उपयोग दूसरे रचनात्मक कार्यों में किया जाय तो विभिन्न क्षेत्र के अनुभव भी विभिन्न विषय की वस्तु हैं रेमन्ट का कथन है, "कोई विषय या कला तब तक भली-भाँति समझ में नहीं आती, जब तक कि उस पर अन्य विषयों द्वारा पढ़ते हुए प्रकाश को हम न देखें। यह तभी हो सकता है जब विषय एक दूसरे से सम्बन्धित कर दिए जाँय और समय का सदुपयोग पूरा-पूरा किया जाय।

—अपूर्ण



बनवारीलाल चौधरी

बुनियादी शिक्षण-अवधि में विद्यार्थियों को कृषि का सामान्य सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है, एवं स्थानीय फसल साग-भाजी और फल, गाय-बैल की देख-रेख और सेवा-शुश्रूषा, मुर्गी पालन, मधुमक्खी--पालन और दुग्धशाला की व्यवस्था का व्यावहारिक ज्ञान और अनुभव भी प्राप्त हो जाता है। बुनियादी शिक्षा का आठ साल का पाठ्यक्रम स्वयं-पूर्ण है और उत्तर बुनियादी शिक्षा का आधार है, बुनियादी शिक्षा-क्रम, इसे ध्यान में रखकर बनाया जाना चाहिए। उत्तर बुनियादी शिक्षा और बुनियादी शिक्षा-क्रम के विषयों में अधिक अन्तर नहीं होगा; परन्तु उत्तर-बुनियादी शिक्षा की अवधि में उनका गहराई से अध्ययन किया जाना चाहिए एवं उनके वैज्ञानिक पहलुओं को विशेष महत्व दिया जाना चाहिए। नीचे हम कतिपय औद्योगिक प्राक्रियाओं के अध्ययन के लिए शैक्षणिक सँकेत दे रहे हैं, जो शिक्षकों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे।

मिट्टी

मिट्टी की वैज्ञानिक परिभाषा बनाने की क्रियाएँ—

क—रासायनिक, ख—भौतिक-यान्त्रिक, ग—जन्तुक।

स्थानीय और आगत मिट्टी का तुलनात्मक अध्ययन, भूमि में पाये जानेवाले धातु, तत्व और रासायनिक क्रियाओं द्वारा उनकी जान-पहचान और प्रतिशत निकालना। विज्ञान-शाला में मिट्टी का भौतिक और रासायनिक विश्लेषण करना। विभिन्न प्रकार की मिट्टी का तुलनात्मक अध्ययन। भूमि का बनाव और पोत-स्ट्रक्चर व टेक्सचर। भूमि का केन्द्रीय तत्व-ह्यूमस। भूमि की वायु, वायुमण्डल की वायु से उसकी भिन्नता। भूमिरंध्र-पोरस स्पेस। भूमि की आर्द्रता। उन्वेक्षीय आर्द्रता-हाइग्रोस्कोपिक माइस्चर। केशाकर्षणीय आर्द्रता।

गुरुत्वाकर्षणीय आर्द्रता—पी० एफ० वेल्यू । पी० एफ० मान । भूमि जल का धरातल । भूमिजल का प्रवाह । पौधों को मिट्टी से प्राप्त होनेवाली आर्द्रता । भूमि का तापमान-चक्र । भूमि के रासायनिक गुण और रासायनिक प्रक्रियाएँ । भूमि के सूक्ष्म प्राणी । भूमि में नत्रजन जमना । भूयन् और विभूयन् । प्रकृति का नत्रजन-चक्र । भूमि की कवक । भूमि की उर्वरा-शक्ति । भूमि का सुधार । भूमि कटन । उसके कारण और निवारण । भारत की प्रमुख भूमि-सायल । उनका वर्गीकरण और स्वभाव । अपने प्रान्त की प्रमुख भूमि । उनका वर्गीकरण और स्वभाव । शाला कृषिक्षेत्र की भूमि का पूर्ण विश्लेषण ।

"विवक सायल टेस्टिंग किट' के उपयोग का अच्छा अभ्यास ।

भूमि-व्यवस्था-सायल मैनेजमेण्ट के लिए की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं का वैज्ञानिक पहलू समझना । काश्त के उपयोग में आनेवाले विभिन्न यन्त्रों का ज्ञान, उन्हें खोलना और फिट करना ।

सिंचाई

पौधों को पानी की आवश्यकता, पौधों की बाढ़ के लिए पानी का आनुपातिक अध्ययन । सिंचाई के स्रोत । देश की मुख्य सिंचाई योजनाएँ । सिंचाई के साधन और उनका यान्त्रिक ज्ञान । रहट, सेंट्रिफ्युगल पम्प और और हाथ पम्प को खोलने और बिठाने का ज्ञान । सिंचाई के सिद्धान्त, सिंचाई की रीति । पानी का नाप—क्युबिक, एकड़, इंच । पानी के नाप के अनुसार 'कर' देना ।

पानी भरवा भूमि, पानी का निथार, खुली और बन्द निथार नालियाँ, उनकी विन्यास व्यवस्था और देख—रेख ।

खाद

खाद का उपयोग—खाद की परिभाषा । पौधों कीविभिन्न तत्वों की माँग । अत्यावश्यक और अल्प आवश्यक तत्व । विभिन्न तत्वों की कमी और बाहुल्य का पौधों पर प्रभाव । पौधों की आवश्यकता से भूमि के तत्वों की उपस्थिति का ज्ञान । चूने की कमी पहचानना । खाद के प्रकार—सेंद्रिय और निनेन्द्रिय । उपयोग और दुरुपयोग । हरी खाद । कम्पोस्ट और फारम-यार्ड खाद बनाना, खली का खाद के रूप में उपयोग । सामान्य प्रचलित खादों में पाये जाने वाले, एन-पी-के का अनुपात । खादों का मिश्रण, उसका फार्मूला समझना, फसलचक्र के सिद्धान्त । सँयुक्त और सहयोगी फसलें ।

शिक्षण सँकेत

बीज और सँकर क्रिया द्वारा उन्नत बीज तैयार करना । उत्तम बीज की परिभाषा । बीज के नमूने की जांच करना । अकुरण का अनुपात निकालना । बीज सँग्रह और सँरक्षण

सीड-ट्रिटमेंट । बीज बोना, अँकुरण क्रिया की विभिन्न रासायनिक क्रियाएँ । उन्नत बीज प्राप्त करने की रीतियाँ । क—चुनाव, ख—पौधा विशेष को चुनना, ग—एक प्रकार के बहुत से पौधे चुनना ।

बाहर से सुधरी जाति के बीज मँगाकर ऐसे स्थानीय जलवायु का उन्हें अभ्यस्त बनाना । सँकर-क्रिया डारविन के सिद्धान्त, सँकर-क्रिया के अन्य सिद्धान्त, गुणों का समावेश, गुणों का विछिन्नीकरण सँकर-शक्ति, सँकर-क्रिया की युक्तियाँ, उनका अभ्यास । कपास, मूँगफली, गेंहूँ और धान पर इसका अभ्यास करना ।

अनाज और बीज का सँग्रह, सँरक्षण । अनाज रखने की प्रचलित रीतियाँ । तुलनात्मक अध्ययन, अच्छाइयाँ और खराबियाँ । बीजों को हानि पहुँचाने वाले कीड़े । उनका जीवन-चक्र, उन्हें नष्ट करने के उपाय ।

खर-पात

खर-पात और उनको नष्ट करना । परिभाषा, प्रकार, प्रतिबन्धक और प्रतिरोधक उपाय । उपायों के प्रकार । क—किसानी, ख—रासायनिक, ग—जैविक ।

फसल-रक्षण

फसलों की रक्षा, हानिकारक कीड़े और बीमारियाँ । प्रतिबन्धक उपाय, रोठर जाति लगाना, भूमि को व्याधिहीन बनाना, इसके विभन्न तरीके ।

जैविक पहचान । परिभाषा, फसलों में पाये जानेवाले कीड़े पकड़ कर बनाना । दो कीड़े के जीवन-चक्र का अध्ययन । कीड़े के दो मूल प्रकार काट कर खाने वाले, रस चूसने वाले । उन्हें नष्ट करने की रीति । उपयोगी औषधियों, उनका व्यवहार । व्यवहार में लाने की सतर्कता । उपयोगी यन्त्र और उनका ज्ञान, उन्हें सुधारने की योग्यता ।

पौधों की बीमारियों के कारण, उनकी क्रियाएँ । रोकने और नष्ट करने के उपाय । बोरडों मिक्सचर बनाने का अच्छा अभ्यास ।

खेती के औजार

कृषि के उपयोगी औजार—हाथ औजार, पँखा मशीन, चारा काटने का यन्त्र, बीज बोने का यन्त्र, भूमि समतल करने का सूपा, और नाली बनाने का हल इत्यादि ।

कृषि-आलेख

रोकड़-बही, दैनिक कार्य-विवरण, बही खाता, खलिहान रजिस्टर, आबहवा भाप बही रसीद बही, सामान खाता, कृषि अर्थ-शास्त्र, कृषि कानून, सहकारी समितियाँ, कृषि सम्बन्धी प्राप्त सरकारी सहूलियतें ।

फारम के वार्षिक कार्य-क्रम और अन्य व्यय-पत्रक बनाना, विक्रय : एग्रीकल्चरल मारकेटिंग इत्यादि ।

विभिन्न फसलें

विभिन्न फसलों की काश्त—कपास, गेहूँ, ज्वार और धान की फसल के काश्त के सिद्धान्त और उनका व्यावहारिक ज्ञान । अन्य स्थानीय फसलों की काश्त का ज्ञान ।

फसलों के वर्गीकरण । जैसे अनाज, द्विदलीय फसल, तेलहन की फसलें, रेवा वाली फसलें, शक्कर की फसलें, मसाले, पेय और नारकोटिक्स आदि तथा चारे की फसलें । इस तरह की एक-एक स्थानीय फसलों की काश्त का ज्ञान, अवलोकन एवं अभ्यास ।

सागभाजी की काश्त

सागभाजी की काश्त का महत्व, आर्थिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भोजन में सागभाजी का स्थान । सागभाजी की काश्त के मूल सिद्धान्त और रीति । रोपा तैयार करना, स्थानीय और अँग्रेजी सागभाजी की काश्त का व्यावहारिक ज्ञान, बीज तैयार करना, सागभाजी का परिवारिक आवश्यकता हेतु सँरक्षण, सागभाजी की काश्त का वार्षिक लेखा-जोखा ।

फलों की काश्त

महत्व, मूल सिद्धान्त, फलों का चुनाव, बाग का विन्यास, काश्त की रीति, फल लगने तक अन्य फसलें लेना, पौधों की काँट-छाँट, फसल गहाना, चालान, बिक्री तथा सँरक्षण ।

स्थानीय दो फलों की काश्त का पूर्ण अभ्यास करना ।

पौधे तैयार करने की रीतियाँ, डब्बा बाँधना, कलम बाँधने का अभ्यास करना ।

गो-पालन और दूध-व्यवसाय

गो-पालन का भारतीय कृषि में स्थान गो-प्रजनन और गो-नस्ल सुधार, प्रजनन के सिद्धान्त और रीति । साँड का महत्व, देखभाल, कृत्रिम रेचन । गर्भिणी गाय और बछड़ों का लालन-पालन, चारा-दाना, सन्तुलित आहार । भारत की प्रमुख गो-नस्ल । उनके स्वभाव की पहचान । द्विप्रयोजन नस्ल तैयार करना । भैंस और उनकी नस्ल । अच्छी गाय की पहचान । गोशाला, उसकी व्यवस्था और प्रबन्ध । दुग्ध-परिचय, दूध दुहने की गलत और सही रीति । दूध का विश्लेषण, दूध का पास्चराइजेशन, बोतल बन्द करना । शुद्ध दूध की जाँच । स्नेह का अनुपात निकालना । मक्खन बनाना, घी बनाना । दूध सेपरेटर यन्त्र और उसका उपयोग, उसे खोलना, फिट करना और उसे साफ करने की रीति ।

मवेशियों की प्रमुख सँक्रामक बीमारियाँ, उनकी रोकथाम और इलाज ।

मवेशियों की सामान्य बीमारियाँ और उनका इलाज ।

गाय का शरीर, उनकी रचना, अवयव और उनकी क्रियाएँ ।

हरे चारे की काश्त, सायलेज बनाना ।

मधुमक्खी पालन

कृषि में मधुमक्खी का महत्व, उपज बढ़ाना । भारत की मौना जातियाँ ।

मधुमक्खी पेटी, उनका नाप, बलू प्रिंट नक्शा, मधु निकालने का यन्त्र, धुआँ फुंकनी ।

मौना परिवार को पकड़ना, मौना परिवार, उसके सदस्य, उनकी समाज व्यवस्था आदि का गहरा अध्ययन ।

मौना पेटी की देख-भाल, रक्षा, दुश्मनों से बचाना, ठण्ड से तथा अति गरमी से रक्षा ।

मधु उत्पादन स्रोत वृक्ष, फसल आदि, शहद निकालना, शुद्ध करना, बोतल बन्द करना तथा बिक्री का ज्ञान ।

मुर्गी पालन

उत्तम कृषि सहायक उद्योग, स्थानीय मुर्गी की जातियाँ और मुर्गी पालन की स्थिति का अध्ययन । उन्नत मुर्गी की जातियाँ और उनके स्वाभाव ।

ग्रामीण सस्ता मुर्गी घर, नक्शा, व्यवस्था, सफाई ।

चुगैना-समतोल भोजन देना । अधिक अण्डे पाने के लिए और गोश्त बढ़ाने के लिए अपेक्षित भोजन का सामवायिक अध्ययन ।

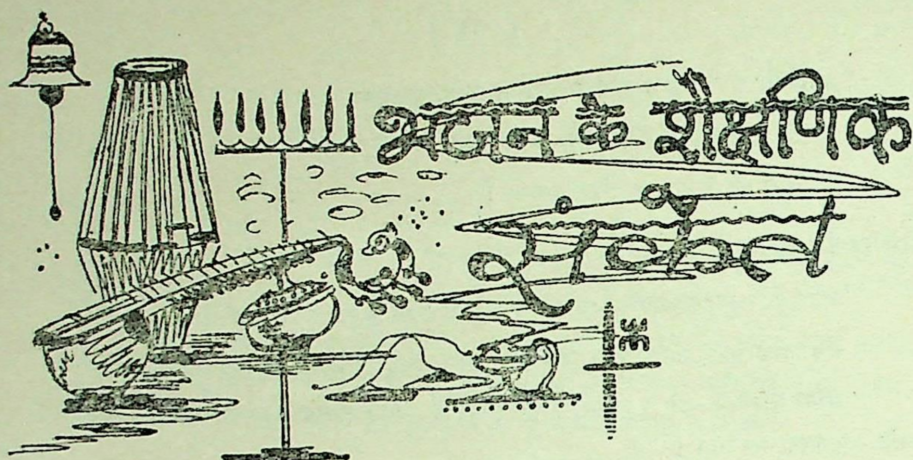
फलित (फर्टाइल) अण्डे जिनसे चूज़े प्राप्त होंगे । अफलित अण्डे खाने के लिए उत्तम । अण्डे की जांच और सँरक्षण ।

चूजों के लिए अण्डे सेना । मुर्गी के नीचे और सेने की मशीन का उपयोग । चूजों की देखभाल और रक्षा ।

मुर्गियों की बीमारियाँ और रोक थाम, इलाज ।

मुर्गी पालन का आर्थिक पहलू ।

इसी प्रकार शिक्षक अन्य स्थानीय उद्योगों के शिक्षण संकेत बना कर उनसे सम्बद्ध वैज्ञानिक जानकारी, क्रियाओं को करते हुए बच्चों को देगा ।



शं० प्र० पाण्डे

गए बीस साल के तजरुबे से मेरा यह पूरा विश्वास हो गया है कि जिस शिक्षक के पास कहानी कहने की, बच्चों के साथ पूरा हिल-मिल कर खेलने की तथा गीत गाने की कला होगी वह बच्चों को लोहचुंबक की तरह आकर्षित कर सकता है। पिछले दिनों बच्चों को भजन सिखाने के सिलसिले में कुछ अनुभव हुये। उन्हें साथी-शिक्षकों के समक्ष रखना चाहता हूँ।

आनन्द-निकेतन छात्रालय में भजन जैसे कार्यक्रमों को शाला के शिक्षा-श्रम के अवान्तर रूप माना गया। हम ने देखा कि बड़ी सामुदायिक भजन-मण्डली में और भिन्न-भिन्न भाषाओं के भजन गाने में बुनियादी शाला में इन छोटे बच्चों को कोई रस नहीं आता है। इसलिए छोटे बच्चों की ही एक अलग भजन-मण्डली संगठित करने का विचार किया। बच्चों के साथ वैसी चर्चा भी शुरू की। बच्चे काफी उत्साहित हुए। इनमें जिनको निसर्गत: कण्ठ की देन है वे तो थे ही, उनके साथ जिनको वह देन नहीं थी, वैसे बच्चे भी भजन-मण्डली में शामिल होने के लिए उत्सुक थे। अगर ये सबके साथ बैठते तो इन के बेसुर कण्ठ से दूसरों को भी बाधा आती है। तो इन बच्चों के मन में न्यूनता का भान न हो और साथ-साथ उन्हें गाने से कैसे रोकें यह सवाल हमारे सामने आया। इस समस्या का हल कैसे करें ? एक बात सूझी। भजन के साथ जिन वाद्यों का उपयोग होता है जैसे सुरीले वाद्यों को खूब जुटाया और कण्ठ की देन के प्रकृति से वंचित बालकों को इन वाद्यों का इस्तेमाल करना सिखाया। कुछ को छोटे-छोटे मंजीरे, किसी को खंजरी किसी को एकतारा, और किसी को स्वरपेटी दी। ये बजाने लगे और जिनका सुरीला कण्ठ था उन्होंने भजन गाने में पूरा रस लेना शुरू किया। इस तरह वाद्यों से बालकों की भजन-मण्डली का रंग कुछ बनने लगा। हमारी इस मण्डली में ८ साल से लेकर १४ साल तक की उम्र के बालक-बालिकाएं शामिल हैं।

भजन और गीतों का अभ्यास हर दिन शाम के भोजन के बाद नियमित रूप से शुरू हुआ। भिन्न-भिन्न संतों के मराठी भजन चुने गये। बच्चों ने सारे भजन कण्ठस्थ किए क्योंकि भजन बिना कण्ठस्थ किये गानेवाला उसमें मग्न नहीं हो पाता। लिखा हुआ देख-देख कर पढ़ने में तो भजन का मजा ही नहीं रहता। भजन लिखवा देने के बाद बच्चों को शब्दार्थ और भावार्थ समझाया जाता है। तथा उन संतों की जीवनी का एक छोटा परिचय देने की भी कोशिश होती है। जिस तरह बच्चों के सामने भिन्न-भिन्न समय की भाषा के नमूने, कठिन शब्द और उनके अर्थ तथा संत-चरितों की झांकी आप ही आप उपस्थित हो जाती है।

इस वर्ष के गणेश उत्सव, जन्माष्टमी, गोपालकाला, तथा ईसा जयंती इन उत्सवों में छोटे-छोटे बच्चों ने ही गीत गा कर कार्य-क्रमों में रंग भर दिया। बच्चे अधिकतर मराठी भाषी होने के कारण गीत भी अधिकतर मराठी हीं रहे। गीतों में खासकर—१, मराठी एवियां, २ श्लोक, ३ कृषिगीत, ४ निसर्ग गीत, ५ ऋतु गीत, ६ लोक गीत—संगृहित किये गये। रामटोली के छोटे-छोटे बच्चों ने इसमें अच्छी प्रगति दिखाई। सभी अब ताल और सुर में गाते हैं। ये सात से लेकर नौ साल की उमर के बच्चे हैं।

हमेशा यह देखा जाता है कि बच्चे जब छुट्टियों में घर जाते हैं तो बाहरी वातावरण से कुछ संस्कार छात्रावास में वापस आते समय ले आते हैं। सिनेमा के गीत गाने का तो आज कल एक ऐसा ही सर्वसामान्य रिवाज हो गया है जिससे बालक मुक्त नहीं रह पाते। गाना मनुष्य का स्वभाव-धर्म है, फिर चाहे कोई भी गाना उसके मुँह से क्यों न निकले? अपने मुक्त वातावरण में वह गाने की कोशिश करता है। बच्चे भी इसी तरह से बाहरी, सिनेमा के या सुने-सुनाये भले-बुरे गीत गाने की कोशिश करते रहते हैं। उनकी इस वृत्ति को ठीक रास्ते पर कैसे लगाया जाय? कुछ अच्छी ठोस चीजें उनके सामने देकर ही तो यह ठीक रास्ते पर ला सकेंगे? प्रार्थना यहाँ के जीवन का एक आवश्यक और महत्वपूर्ण अंग है ही। बच्चों को भी निश्चित दिन सामूहिक प्रार्थना में अपनी भाषा के भजन गाने की जिम्मेवारी देने का निश्चय किया और इस तरह प्रार्थना के लिए भजन की तैयारी करने की योजना उनके सामने रखी। अभी तक जितने भजन सीखे वे अच्छी तरह से मुखस्थ हों तथा स्वतंत्रतापूर्वक गाने की हिम्मत बढ़े इस दृष्टि से हर शनिवार प्रार्थना के बाद बच्चों के साप्ताहिक भजन की योजना भी बनी। बच्चे अपने संग्रह में वृद्धि करने लगे। इस तरह भजन के अभ्यास का एक स्पष्ट उद्देश्य बच्चों के सामने आया। उनके मन में भूमिका तैयार हुई। ऐसी अवस्था में सिर्फ शिक्षक की ओर से इशारा मात्र की आवश्यकता होती है। बच्चे शिक्षक की ओर कूद पड़ते हैं और उत्साह का स्वर वातावरण में गूंज उठता है। इस स्वर का नाद दिन रात सोते-बैठते काम करते, खेलते सभी समय सुनायी देता है। इससे बच्चों की गुप्त शक्तियाँ जगीं और ठीक रास्ते पर मुड़ गयीं, ऐसा विश्वास होता है।

इस कार्यक्रम से निम्न लिखित शैक्षणिक उद्देश्यों की पूर्ति की अपेक्षा है ।

१—भजनों और गीतों का प्रसंगों के अनुसार चुनाव और वर्गीकरण

२—सम्बन्धित संतों या कवियों की जीवनी का परिचय

३—भजनों का शब्दार्थ तथा भवार्थ समझना

४—साहित्यिक क्षेत्र में भजन तथा अन्य गीतों का स्थान

५—सांस्कृतिक कार्य-क्रमों में भजन और गीतों का आयोजन

इस दृष्टि को सामने रखकर यदि ऐसे कार्यक्रमों को हाथ में लिया जाता है तो समस्यात्मक बच्चों के भी ठीक रास्ते पर आने में बहुत मदद मिल सकती है ।

शिक्षक-प्रशिक्षण

बेसिक शिक्षा के विस्तार एवं प्रसार के लिये प्रशिक्षित शिक्षक अत्यन्त आवश्यक है । शिक्षक प्रणाली का चक्र विशेषकर गणतन्त्र शासन में शिक्षक होता है । अतः बेसिक शिक्षा प्रसारहेतु प्रथम कार्य प्रशिक्षित शिक्षक तैयार करना है । सम्पूर्ण भारत में निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की योजना के साथ ही पर्याप्त योग्य शिक्षकों की पूर्ति का महत्वपूर्ण प्रश्न सामने उपस्थित हो गया है । स्वतन्त्रता के पूर्व शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों की संख्या बहुत थोड़ी थी २८ लाख शिक्षकों की आवश्यकता थी और केवल५,६१००० प्रामाणिक शिक्षक सुलभ थे, उसमें भी केवल ५८,२/ प्रशिक्षित शिक्षक थे । अभी भी प्रशिक्षण विद्यालयों की संख्या अपर्याप्त है । गत वर्षों से इस दिशा में हुई प्रगति अत्यन्त उत्साह वर्धक है ।

आपके प्रश्न हमारे उत्तर

गोरखनाथ चौबे

प्रश्न—बुनियादी शिक्षा और दूसरे प्रकार की शिक्षा में क्या अन्तर है ?

उत्तर—बुनियादी शिक्षा स्वावलम्बी शिक्षा है। इसके द्वारा एक ऐसे समाज का निर्माण होगा जिसमें सब लोग अपने परिवार के साथ अपने घर पर रहते हुये अपनी रुचि के अनुसार जीवन व्यतीत करेंगे। जीविका और जीवन-निर्माण का प्रश्न एक साथ ही हल होगा। ऐसे समाज में कोई किसी का शोषण नहीं करेगा।

इसके विपरीत दूसरे प्रकार की शिक्षा, जो आज कल प्रचलित है, बेकारी की समस्या खड़ी करती है। पढ़ा लिखा आदमी नौकरी की खोज में घर-द्वार, माता-पिता सबको छोड़ देता है ? इतने पर भी सबको नौकरी नहीं मिलती। ऊँची-ऊँची डिग्री लेकर और हजारों रुपये खर्च करके जब वे नौकरी नहीं पाते तो जीवन से निराश होकर छोटी-मोटी नौकरियों का सहारा लेते हैं, जिसमें न तो कोई आनन्द आता है और न पेट भरता है।

प्रश्न—फिर वह बुनियादी शिक्षा चलाई क्यों नहीं जाती ?

उत्तर—चल तो रही है, लेकिन उसकी गति कुछ धीमी है।

प्रश्न—गति धीमी क्यों है ?

उत्तर—इसलिए कि अभी पिछली शिक्षा का मोह बाकी है। कुछ पैसे वाले लोग इससे लाभ उठा लेते हैं ओर अभी उनका काम चल जाता है। परन्तु उन्हें यह ध्यान नहीं है कि जब शिक्षा इतनी तेजी से बढ़ रही है तो एक असन्तुष्ट समाज में उनकी क्या

दशा होगी। क्या यह अच्छा लग सकता है कि हम तो आनन्द से रहें और हमारे चारों ओर लोग बेकार और भूखे रहें ? वह तो एक भयंकर स्थिति होगी।

प्रश्न—-बुनियादी शिक्षा के चलाने में कठिनाई क्या है ?

उत्तर—कठिनाई केवल विश्वास की है। इसमें न तो खर्च अधिक है और न किसी बड़े साजो सामान की आवश्यकता है जब सब लोग इसमें विश्वास कर लेंगे तो इसकी ओर स्वयं झुकेंगे।

प्रश्न—सरकार को इस शिक्षा के चलाने में क्या कठिनाई है ?

उद्यर—यह तो प्रजातन्त्र का युग है। जो जनता चाहेगी वही सरकार करेगी। जब देश के माता-पिता अपने बच्चों को बाबू बनाना चाहते हैं और किसी काम काज में नहीं लगाना चाहते तो सरकार क्या करे। किसान नहीं चाहता कि उसका लड़का खेती करे; तेली, बढ़ई, लुहार नहीं चाहते कि उनके लड़के अपने पेशे का कार्य करें। सब नौकरी चाहते हैं, सरकार सबको नौकरी नहीं दे सकती। एक ओर तो लोगों को नौकरी नहीं मिलती और दूसरी ओर घरेलू उद्योग-धन्धे नष्ट हो रहे हैं। इसका क्या इलाज है ? जब लोग समझ लेंगे कि काम-धन्धे के बिना कोई देश जीवित नहीं रह सकता और पढ़ाई लिखाई के साथ काम-काज का मेल बैठाना जरूरी है तब सरकार भी बुनियादी शिक्षा को चलाएगी।

प्रश्न—-बुनियादी शिक्षा को कुछ लोग असफल कहते हैं। क्या यह सही है ?

उत्तर—बुनियादी शिक्षा असफल नहीं हो सकती। अभी इसका सही ढंग से पूरे विश्वास के साथ प्रयोग ही नहीं किया गया है। गांधी जी ने सिद्धान्त बनाकर इसका प्रयोग किया था। और उनका यह प्रयोग सफल हुआ था। जब उसी विश्वास और उद्देश्य को लेकर हम बुनियादी शिक्षा को चलायेंगे तभी वह सफल होगी। कोई भी पौदा अपने ही वातावरण में हरा-भरा रहता है और फलता फूलता है। इसी तरह अच्छे से अच्छे सिद्धान्त को वातावरण की आवश्यकता होती है।

प्रश्न—-वातावरण के लिये सरकार क्या करे ?

उत्तर—शिक्षा में आज वातावरण बिगड़ा हुआ है। जनता इसके कुपरिणामों से अनभिज्ञ है। एक गरीब भी लम्बी फ़ीस देकर अपने बच्चे को शिक्षा देता है। वह समझता है कि ज्योंही लड़का हाईस्कूल या बी० ए० पास कर लेगा, उसी समय उसे कोई बड़ी नौकरी मिल जायेगी। वह नहीं जानता है कि उसका पेशा भी नष्ट हो रहा है और लड़के का भविष्य अन्धकारमय हो रहा है।

सरकार देश में वातावरण का निर्माण कर सकती है। इसके लिए बुनियादी शिक्षा के विशेषज्ञ कुछ ऐसे कार्य-क्रम तैयार कर सकते हैं जिससे जनता में शिक्षा के प्रति एक नया दृष्टिकोण पैदा हो। प्रत्येक आवश्यक और उपयोगी कार्य के लिए वातावरण का निर्माण करना पड़ता है। चीन के आक्रमण से पहले भारत का जो वातावरण था उससे आज हमारा काम नहीं चल सकता। देशवासियों में आज स्फूर्ति-चरित्रबल, और त्याग की आवश्यकता है। सरकार विभिन्न उपायों से इसके लिये वातावरण तैयार कर रही है। जब युद्ध के लिए वातावरण बन सकता है तो बुनियादी शिक्षा के लिए अथवा समाज निर्माण के लिए वातावरण क्यों नहीं बन सकता ?

प्रश्न—इससे तो यही जान पड़ता है कि केवल स्कूल खोलने से बुनियादी शिक्षा सफल नहीं होगी। वातावरण कैसे तैयार किया जाय और उसके लिये सरकार क्या करे ?

उत्तर—सरकार दो कार्यक्रम साथ-साथ चलावे एक ओर तो वह बुनियादी शिक्षा के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षण देकर स्कूलों की वृद्धि करे दूसरी ओर कुछ सुयोग्य व्यक्तियों को इस कार्य के लिये नियुक्त करें कि वे प्रत्येक जिले में जा जाकर विद्यार्थी, अध्यापक जनता तथा, सरकारी अधिकारियों के बीच बुनियादी शिक्षा की व्याख्या करें, इसके लिये जन साहित्य का निर्माण किया जाय। मेला, प्रदर्शनी, सभा, समारोह—इन तरीकों से वातावरण का निर्माण हो। बुनियादी शिक्षा बोर्ड अपने-अपने प्रान्त में इस कार्य को सुचारु रूप से कर सकती हैं। केन्द्र से भी इसी तरह के कार्य सम्पूर्ण देश में हो सकते हैं। फिर बुनियादी शिक्षा को बल मिलेगा और उसके उद्देश्य की पूर्ति होगी। जो पैसा सरकार बेकारी के लिए लगाना चाहती है वह बुनियादी शिक्षा पर लगाया जाय तो बेकारी पैदा ही न हो।

प्रश्न—तब तो बुनियादी शिक्षा का नीचे से ऊपर तक एक ठोस कार्य-क्रम बनना चाहिए। इसमें देर क्यों हो रही है ?

उत्तर—इधर कुछ वर्षों से यह प्रश्न कुछ जोर पकड़ने लगा है। चीन की लड़ाई ने इसे थोड़ा सा शिथिल कर दिया है। फिर भी सरकार इस विषय में दृढ़ संकल्प है कि बुनियादी शिक्षा का कार्य-क्रम चलता रहे। इतना अवश्य है कि अभी तक इसका पूरा नक्शा हमारे सामने नहीं है। अभी हमने शिक्षा को ग्रामोपयोगी नहीं बनाया है। एक भी विश्वविद्यालय अपने को ग्रामीण नहीं कह सकता। सही अर्थ में वह बुनियादी शिक्षा का विकसित रूप नहीं है। परन्तु इसे तैयार करने में कोई कठिनाई नहीं है।

प्रश्न—क्या बुनियादी शिक्षा में विज्ञान की उन्नति हो सकेगी ?

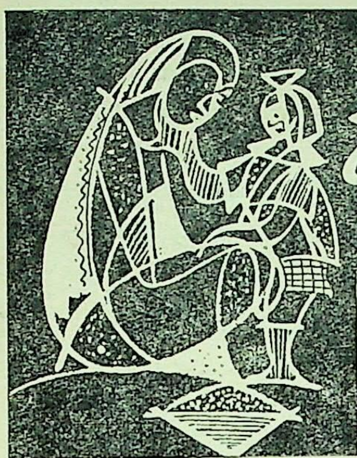
उत्तर—बुनियादी शिक्षा में किसी विषय को पढ़ाने-लिखाने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती जब सभी विषयों की जानकारी कर रूप और उद्देश्य बदलेगा तो विज्ञान का भी रूप बदलेगा, शिक्षा इसलिए नही दी जाती है कि केवल विषयों का ज्ञान हो जाय। उनके द्वारा जीवन का कैसे निर्माण हो—इसका भी ध्यान रक्खा जाता है। जब तक शिक्षित व्यक्ति समाज का एक अंग नहीं बन जाता तब तक उसकी पढ़ाई लिखाई अधूरी रहेगी। विज्ञान तो आधुनिक युग का प्रधान विषय है। परन्तु समाज के लिये उसे हितकर बनाना है। बुनियादी शिक्षा में भी विज्ञान उपयोगिता के मार्ग पर लाया जा सकता है।

प्रश्न—तो क्या वर्तमान चालू शिक्षा को बन्द कर दिया जाय ?

उत्तर—जब अच्छे रास्ते का निर्माण किया जाता है तो पुराना रास्ता तब तक चालू रहता है जब तक नया बनकर तैयार नहीं हो जाता। फिर तो पुराने को लोग अपने आप ही छोड़ देते हैं। अभी कुछ दिन पहले हमारे देश में इकन्नी दुअन्नी, आने पाई का चलन था। आज वह केवल रूपये पैसे में रह गया। लोग नये सिक्के का प्रयोग कर रहे हैं। इसी तरह नाप तौल और दूरी में भी नया पैमाना आया है। उसे भी लोग अपना रहे हैं। इसी तरह बुनियादी शिक्षा का चलन हो जाने पर और इसकी मान्यता प्राप्त होने पर पुरानी शिक्षा अपने आप समाप्त हो जाएगी।

प्रश्न—क्या बुनियादी शिक्षा के लिये पर्याप्त कुशल अध्यापक हैं ?

उत्तर—जब नया बाँट चालू किया गया तो कई शहरों में भी इसकी कमी पड़ गई। कुछ समय तक पुराने बाँटों से ही काम लिया गया। आज भी वह काम दे रहा है। फिर भी नये बाँटों को चालू किया जा रहा है। इसीलिए अध्यापकों की कमी से कोई शिक्षा योजना रोकी नहीं जा सकती। अध्यापकों के प्रशिक्षण पर पूरी शक्ति लगा दी जाय तो प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी को बूर किया जा सकता है साथ ही लगन से काम किया जाय तो अध्यापकों की बड़ी से बड़ी टोली सदैव तैयार होती रहेगी।



माँ, मैं कहाँ से आया

देवीप्रसाद

कितना सामान्य है यह प्रश्न और कितना जिज्ञासा-पूर्ण किन्तु कितना कठिन !

मुन्ना चार बरस का था। एक दिन बेचारे ने माँ से पूछा 'माँ, मैं कहाँ से आया ?' माँ कुछ काम कर रही थी। उसने मुन्ना को एक डाँट दिया। इसी तरह दिन बगल के मकानवाली माँ को अपनी बच्ची से कहते हुए सुना—"अभी तो तू नहीं समझेगी, जब बड़ी हो जायगी तब खुद समझ जायगी।" भला क्या लगा होगा उन बालकों को। उनकी जिज्ञासा का जवाब तो मिला ही नहीं; बल्कि उसके पीछे एक अजीब भाव आ गया। मन में बेचारे बालक ने सोचा होगा—शायद इसके पीछे कुछ रहस्य है और वह अजीब तरह से सोचने लगता है।

एक अवस्था तक तो बालक यही सोचता है कि माँ उसे कहीं से उठा कर ले आयी या शायद बाजार से लायी; किन्तु पड़ोसी के घर में बच्चा आया तो यह प्रश्न फिर उठता है कि वह कहाँ से आया। फिर जब बालक की अपनी छोटी बहन या भाई होने वाला होता है तो सवाल और भी उत्कट हो जाता है—माँ के पेट में छोटी बहन या भाई है, मैं भी माँ के पेट में था। इस अवस्था में जिज्ञासा और भी उत्कट हो जाती है। माँ के पेट में कहाँ से आया।

इधर आधुनिक शिक्षा-शास्त्र यह कहता है कि बालक के जिज्ञासा की तृप्ति होनी चाहिए; उसकी जिज्ञासावृत्ति का लाभ उठा कर उसे वैज्ञानिक जानकारी देनी चाहिए। इस सद्भाव के कारण अनेक पढ़े-लिखे माता-पिता और शिक्षक भयानक गलतियाँ कर बैठते है। जब वैज्ञानिक बारीकियों में जाकर बालक को शिशु जन्म की बात बताने बैठते हैं तो सूक्ष्म आदर्शवाद के बावजूद बालक को वही कुछ बता डालते हैं, उसके वे साथी बतायेंगे, जो बदमाश, शैतान, बिगड़ते हुए लड़के-लड़कियाँ कहलाते हैं।

आजकल के ज्ञानी शिक्षा शास्त्री कहते हैं कि बच्चे के इस प्रश्न का उतना ही उत्तर दो जितना कि उसने पूछा है यानी उसे खींचतान कर उससे अधिक बताने का प्रयत्न न करो। यह भी कठिन चीज है; क्योंकि कितना बताना, यह तय करना कोई आसान काम नहीं। चार वर्ष का चुन्नू जो प्रश्न पूछ रहा है वह क्या छोटा प्रश्न है। 'मां, मैं कहां से आया ?' कितना सन्श्लिष्ट प्रश्न है ! बड़े-बड़े दार्शनिक भी उसका उत्तर नहीं दे पाये। बेचारी केसरी या रामदुलारी उसका क्या उत्तर देगी ? या बेचारा पूर्व-बुनियादी का शिक्षक विट्ठल, महाजन क्या कहेगा इसके उत्तर में ?

एक प्रश्न: दो उत्तर

हम इस प्रश्न के दो उत्तर आपके सामने रखना चाहते हैं। यह दोनों उत्तर कल्पना से तैयार नहीं किये गये हैं, बल्कि उन्हें हमने अपने आप सुना और देखा है। इसका यह मतलब नहीं कि हर माता-पिता और शिक्षक इन प्रश्नों को अपना नमूना समझें और हमेशा इस तरह के मौके पर इनका उपयोग करें। उन्हें तो समझना है उनकी भावना से। उनके पीछे जो चीजें हैं वे वैज्ञानिक जानकारी नहीं है। इसके पीछे उस प्रेम और माननीय सम्बन्ध का चित्र है, जो शिक्षा का आदर्श है, शिक्षा का उद्देश्य है।

एक माता दोपहर में बैठी शाम के भोजन के लिए भाजी काट रही थी। साढ़े चार साल का नन्दू, जो शाला से छूटने के बाद अभी तक अन्य बालकों के साथ खेल रहा था, आया। गम्भीर आवाज में उसने अपनी माँ से पूछा—रामलाल है न, वह कहता है कि मैं तुम्हारे पेट में था। माँ, मैं तुम्हारे पेट में कहाँ से आया ? हृदय स्नेह से लबालब भर गया और उसने बड़ी गम्भीर पर प्रेम भरी आवाज से नन्दू को कहा—"बेटा, तुझे मैंने बहुत तपस्या करने के बाद पाया।"

नन्दू को प्रश्न का उत्तर ही केवल नहीं मिला, उसे माँ के हृदय में एक बार और गोता लगाने का मौका मिल गया। वह माँ के कन्धे पर चढ़ गया और उसने उस कोमल शरीर और मन से माँ को प्यार से छा दिया। 'माँ, तुम मुझे इसीलिए इतना प्यार करती हो न ?' एक सामान्य स्त्री न तो बाल-मनोविज्ञान की शब्दावलि से परिचित और शायद पढ़ी-लिखी भी अल्प ही, कितना उपयुक्त उत्तर ! विज्ञान के कहीं ऊपर !

दूसरा उत्तर एक महापुरुष द्वारा दिया गया है। उसे पढ़ कर पता चलेगा कि प्रश्न के उत्तर में वह बालक को किस मानवीय जगत में ले जाता है। यह, वह जगत है, जिसमें निवास करना, सिखाना शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य होना चाहिए। प्रेम का जगत मानवीय सम्बन्धों का जगत है। 'शिशु' नामक कविता-संग्रह की यह प्रथम कविता है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ माँ बनकर बालक के इस प्रश्न का उत्तर देते हैं।

बंगला	हिन्दी
खोका माके शुधाय डेके	शिशु माँ को पुकार कर पूछता है
"एलेम आम्ही कोथा थेके,	"मैं कहाँ से आया,
कोन्खाने तुइ कुडिए पेलि आमारे"	तू मुझे कहाँ से उठा लायी"
मा शुने कय हेसे केन्दे	माँ, यह सुन हँस कर और रोकर और
खोकारे तार बुके वेंधे-	शिशु को छाती से लगाकर कहती है-
"इच्छा खय छिलि मनेर माझारे।	"तू इच्छा वन कर मेरे मन में थ'।
छिलि आमार पुतुल-खेलाय,	तू था मेरे गुड़िया के खेल में,
प्रभात शिवपूजाय वेलाय	प्रभात में शिव-पूजा के समय
तोरे आमी मेंगेछि आर गडेछि	तुझे मैंने गढ़ा और तोड़ा
तुमि आमार ठाकुरेर सने	तू मेरे ठाकुर के अन्दर था,
छिलि पूजार सिंहासने	तू पूजा-सिहासन पर था।
तारि पूजाय तोमार पूजा करेछि।	उनकी पूजा में मैंने तेरी पूजा की।
आमार चिरकालेर आशाय,	मेरी चिरकाल की आशा में,
आमार सकल मालो बासाय,	मेरे सारे प्यार में
आमार मायेर दिदिमायेर पराने-	मेरी माँ और दादी के प्राण में-
पुरानो एइ मोदेरे घरे	हमारे इस पुराने घर में
गृहदेवीर कोलेर परे	गृहदेवी की गोद में
कत काल ये लेकिये छिलि के जाने	कौन जाने कितने काल तू छिपा था
यौवनेते यखन हिया	यौवन में जब हृदय
उठे छिल प्रस्फुटिया,	प्रस्फुठित हो उठा था
तुइ छिलि सोरभेर मतो मिलाये,	तू सौरभ की भाँति उसमें मिल हुआ था
आमार तरण अँगे अँगे	मेरे तरुण अँग अँग में
जडिये छिलि सँगे सँगे	साथ-साथ जुड़ा हुआ था
तोर लावण्य कोमलता बिलाये।	तेरी लावयण-कोमलता मिल कर
सब देवतार आदरेर धन	सब देवताओं के प्यार का तू धन
नित्य कालेर तुअि पुरातन,	चिरकाल का तू पुरातन
सुप्रभातेर आलोर समवयसि-	तू है प्रभातर-प्रकाश का समवयसी-
तुअी जगतेर स्वप्न हते	तू सँसार के स्वप्न में से
अेसेछिस आनँद-स्रोते	आनन्द-स्रोत में आया है
नूतन हय आमार बुके विलसि	नूतन होकर मेरे हृदय में



गोरखनाथ चौबे

उत्तर-प्रदेश भारत के सबसे बड़े प्रदेशों में है। इसे यह सुविधा प्राप्त है कि शासन के सभी क्षेत्रों में नई-नई योजनाओं को चालू करे और दूसरे राज्यों को अपनी गतिविधि से लाभ पहुँचाए। शिक्षा के क्षेत्र में भी उत्तर-प्रदेश ने पथ प्रदर्शन किया है। बेसिक शिक्षा बोर्ड ने अपने रचनात्मक सुझावों से सरकार को शिक्षा में अनेक परिवर्तन की सलाह दी है। सरकार उसे अमल में लाने की बातों पर विचार कर रही है। एक वर्ष जब शिक्षा विभाग ने सभी जिलों के कुछ ऐसे स्कूलों को विशेष सहायता का प्रबन्ध किया था जो कक्षा १ से ८ तक एक ही स्कूल में चलते हैं। सरकार का विचार था कि इन स्कूलों में बुनियादी शिक्षा पर अधिक बल देने का अवसर मिलेगा। सरकार का यह प्रयास अभी चल रहा है और यदि वह सफल हुआ तो इस प्रकार की सुविधायें और स्कूलों को भी दी जायेंगी। इससे बुनियादी शिक्षा अपने असली ध्येय को प्राप्त करेगी। उसमें स्वावलम्बन, सफ़ाई तथा जीवन-शिक्षण का अच्छा अवसर मिलेगा। एक प्रकार से वे स्कूल बुनियादी शिक्षा के नमूने के स्कूल हैं जिनका क्रमशः विस्तार होता जायेगा। कुछ समय बाद प्रायः सभी प्राइमरी तथा जूनियर हाई स्कूल नमूने के बुनियादी स्कूल हो जायेंगे।

अध्ययन मंडली का निर्माण

कुछ महीने हुये बेसिक शिक्षा बोर्ड ने एक अध्ययन मंडली का निर्माण किया है। बोर्ड के सदस्य इस मंडली के सदस्य हैं। वे ऊपर कहे गये बुनियादी शिक्षा के नमूने के स्कूलों में जाकर इस बात का अध्ययन करते हैं कि इनकी प्रगति कैसी है बुनियादी शिक्षा अपने असली रूप में किस अंश तक उन्नति कर रही है। इसकी प्रगति में क्या-क्या बाधाएं हैं और कैसे

दूर किया जा सकता है अभी-अभी इस अध्ययन मंडली ने अपना कार्य आरम्भ किया है। कुछ जिलों में इसकी प्रगति का अध्ययन किया गया है। प्रशिक्षण विद्यालयों की प्रगति का भी अध्ययन हो रहा है। कुछ और जिलों में इनकी प्रगति को देखने के बाद अध्ययन मंडली अपना सुझाव सरकार को देगी। अध्ययन मंडली के कार्यों में शिक्षा अधिकारियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो रहा है। अध्यापक, विद्यार्थी, स्कूल-भवन, खेती, अन्य उद्योग इसका पूरा चित्र सामने आ जाने से बुनियाद शिक्षा का एक सही चित्र सामने आ जाता है। यह कार्य केवल आफिस में बैठकर अथवा किसी एक स्थान पर विशेषज्ञों की मीटिंग करके नहीं किया जा सकता। शिक्षा का सजीव रूप तो प्रत्यक्ष अध्ययन से ही सामने आ सकता है।

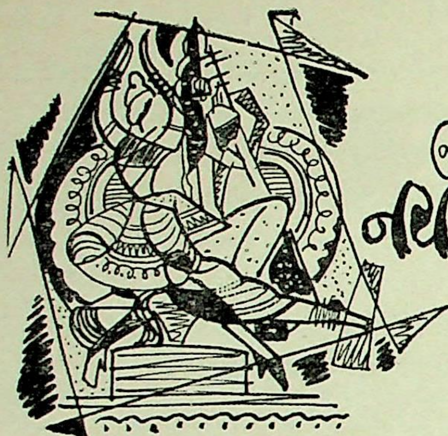
बुनियादी शिक्षा और चीन का युद्ध

भारत पर चीन के हमले ने हमारे जीवन को एक नया मोड़ दिया है। इस हमले का प्रभाव सरकार के सभी विभागों पर पड़ना स्वाभाविक है। सुरक्षा के सामने हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम और कार्यों की ओर कम ध्यान दें। जहाँ तक शिक्षा विभाग का प्रश्न है वह भी कम प्रभावित नहीं हुआ है। अध्यापक और विद्यार्थी—दोनों में अभूतपूर्व चेतना और स्फूर्ति जागृत हुई है। सरकार की ओर से शिक्षा संस्थाओं को यह आदेश दिये गये हैं कि इस संकट की घड़ी से कठोर त्याग और अनुशासन की आवश्यकता है। बुनियादी शिक्षा की प्रगति में सरकार लेश मात्र भी कमी नहीं करना चाहती। ऊँची कक्षाओं में चाहे जितनी भी उलट फेर की जाय परन्तु बुनियादी शिक्षा में कमी करने का इरादा नहीं है। हमारे छोटे-छोटे बच्चों की शिक्षा बहुत ही सुचारु रूप से चलती रहेगी। इतना अवश्य है कि हम पढ़ाई-लिखाई के घंटों में अथवा कुछ विषयों की पढ़ाई में थोड़ा-बहुत उलट फेर कर दें। नये स्कूलों का निर्माण तेजी से सम्भव नहीं है और इधर शिक्षा की वृद्धि काफी तेजी से हो रही है, इसीलिए स्कूलों की कमी के कारण कुछ उलट-फेर की गई है। जहाँ लड़के अधिक हैं और स्थान की कमी है वहाँ दो बख्ती पढ़ाई आरम्भ की गई है। नए-नए पोस्टर और नारे भी विद्यार्थियों में वितरित किये गये हैं; जिससे वे देश की संकटकालीन स्थिति से अनभिज्ञ न रहें।

अध्यापकों से निवेदन

पत्रिका के लिये पाठ्यक्रमानुसार सम्बन्धित लेखादि प्रति मास १५ तारीख तक अवश्य पहुँच जाने चाहिए।

—सम्पादक



नयी संस्कृति : नयी शिक्षा

किशोरीलाल मश्रूवाला

जो शिक्षा-पद्धति हमारे देश में प्रचलित है उस पर अनेक प्रकार के आक्षेप किये जाते हैं। ये आक्षेप आज से नहीं परन्तु वर्षों से होते रहे हैं। तो भी वह पद्धति अभी तक कायम है और समझने लायक बात तो यह है कि आक्षेप करने वाले हम लोगों में से अधिकतर उस पद्धति का सँचालन करने वालों में से ही पैदा हुए हैं तथा आक्षेप करने पर भी उसी पद्धति को चलाते हैं। इसलिए हमें विचार करना चाहिए कि हम इस शिक्षा पर आक्षेप क्यों करते हैं और इसके बावजूद इसी को क्यों चला रहे हैं ?

हम इस शिक्षा पर आक्षेप करते हैं, इस का अर्थ यह है कि इसके द्वारा हमारी आवश्यकताएँ या हमारी आकाँक्षाएँ अथवा दोनों अच्छी तरह पूरी नहीं होती हैं। हम इसी शिक्षा को कायम रखते, इसका अर्थ यह होता है कि उसके द्वारा हमारी कुछ आवश्यकताएँ या आकांक्षाएँ अथवा दोनों पूरी होती हैं। इन दोनों बातों का हमें ध्यान रखना चाहिए और उनका रहस्य समझना चाहिए।

सफेद पोशों की सँस्कृति

हमें इतना याद रखना चाहिए कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति भी एक विशेष प्रकार की संस्कृति की प्रतिनिधि है। यह सर्वथा विदेशी है, यह कहना ठीक नहीं है। मेरे मतानुसार जिस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली प्राचीन काशी अथवा आज की भी सनातनी काशी व मुसलमानों के समय में हमारे समय में देश में प्रचलित थी उससे आज की शिक्षा का प्रकार भिन्न नहीं है। यह सही है कि तीनों युगों में अलग-अलग भाषाओं को प्रतिष्ठा मिली है। एक काल में सँस्कृत भाषा की प्रतिष्ठा सब से अधिक थी, बाद में फारसी की और फिर हिन्दुस्तानी की और फिर अँग्रेजी भाषा की। इस प्रकार एक के पश्चात् दूसरी की प्रतिष्ठा बढ़ रही है वह सँस्कृति

उनकी है, जिन्हें हम भद्र लोग अथवा सफेद पोश लोग मानते हैं । मेरा तो ख्याल है कि कम से कम पिछले एक हज़ार वर्षों से राज्य की तरफ से बालकों और बडों को शिक्षा और सँस्कार देने का जो काम हुआ है वह केवल सफेदपोश लोगों में ही हुआ है ।

ये सम्मानित जातियाँ हमारे देश में आरम्भ से ही रही हैं । वे अँग्रेजों की पैदा की हुई नहीं हैं । सम्भव है कि अँग्रेजों ने उनका क्षेत्र कुछ बढ़ा दिया हो; परन्तु अँग्रेजों ने उन्हें पैदा नहीं किया ।

भद्र संस्कृति के लक्षण

भद्र सँस्कृति का लक्षण मनुष्य की तर्क और कल्पना-शक्ति का विकास है । संस्कारिता के क्षेत्र में शास्त्री, पण्डित, उलेमा, कवि, ललित कलाकार-चित्रकार-गायक इत्यादि लोग इसके प्रतिनिधि हैं। दुनियादारी के क्षेत्र में वकील, वैद्य, डाक्टर, हकीम, अध्यापक, उस्ताद और मौलवी हैं । अँग्रेजी शिक्षा-पद्धति का संस्कृत के विकास की ओर लक्ष्य नहीं था । हाँ, उस पद्धति ने उसे अपने विचारों का वेष जरूर पहना दिया है; परन्तु यह तो इसलाम ने भी किया था । दुनियादारी के क्षेत्र में अंग्रेजों ने ऐसे भी कुछ भद्र धन्धे निर्माण कर दिए हैं, जिन में बुद्धि और परिश्रम दोनों के कामों को अलग करके उन को बौद्धिक विभागों के भद्र धन्धे बना दिए गए हैं । उदाहरणार्थ-इन्जीनियरिंग, खेती वगैरह । अंग्रेजों ने अपने सूक्ष्म शास्त्रीय नियम-पालन की आदतों के जरिए, इन बुनियादी धन्धों का अधिक विकास भी किया है । अँग्रेजी शिक्षा के विरुद्ध आक्षेप करने के बावजूद हमारा भद्र वर्ग उसे छोड़ नहीं सकता । इसका कारण ऊपर बताया गया है ।

भद्र संस्कृति, मनुष्यों की समानता के सिद्धान्त पर खड़ी नहीं हुई है । तात्विक दृष्टि से वह केवल मनुष्यों की नहीं; भूत मात्र की समानता बतायेगी, परन्तु दुनियादारी के कामों में वह इतना ही नहीं कहती कि मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद होते हैं; परन्तु यह भी कहती है कि ये भेद रहने भी चाहिए । हिंसा-पशुबल को अपरिहार्य मानती है और कहती है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी-अपनी मर्यादा में रखने के लिए समाज के राजदण्ड को सदा घूमते रहना चाहिए ।

यह कहा जा सकता है कि व्यवहार में भद्र संस्कृति उतने ही मानव विभाग को मनुष्य-जाति में गिनती है, जिसे वह भद्र जीवन में निभाये रखना सम्भव मानती हो । बाकी लोग संस्कृति के क्षेत्र से बाहर और उसकी व्याख्या के भी बाहर हैं । क्षुद्र, गुलाम, दास गिरमिटिया और कुछ भी हो सकते हैं; परन्तु इसके समाज के नहीं हो सकते और समाज के सारे अधिकार या सुविधाएँ भोगने के पात्र नहीं हो सकते ।

सन्त-संस्कृति

भद्र संस्कृति से ऊँचे दर्जे की और संस्कृति भी प्राचीन काल से जगत में चली आयी है उसे मैं सन्त अथवा औलिया सँस्कृति कहूँगा। कभी-कभी उसे पूर्व की संस्कृति और भद्र संस्कृति को पश्चिम की संस्कृति कहा जाता है; परन्तु मुझे यह परिभाषा उचित नहीं जान पड़ती। फिर यह भी नहीं कि भद्र संस्कृति आसुरी है और भद्र संस्कृति से बाहर रहने वाले लोग दैवी संस्कृति के ही है। दोनों संस्कृतियाँ दुनिया में प्रचलित हैं और जैसे भद्र संस्कृति में कुछ दैवी अँश भी हैं वैसे ही उसके बाहर रहने वाले लोगों में आसुरी भाव भी हैं। फिर सारी दुनिया के देशों में औलिया और सन्तों की भी एक परम्परा सदा से चली आई है। इन सन्तों का काम जितना और लोगों में हुआ है, उतना भद्र लोगों में नहीं हुआ। वे तो भद्रेतरों के साथ तादात्म्य साध लेते हैं। प्रायः भद्र लोगों ने उनका विरोध किया है और उन्हें कष्ट भी दिये गये हैं; परन्तु अन्त में कम से कम जबान से उन्हें स्वीकार किया है और उनकी स्थूल वन्दना की हैं। गाँधी जी इसी परम्परा के पुरुष हैं।

सन्त-सभ्यता के सिद्धान्त

भारत की हो या बाहर की, सन्त-सभ्यता के तीन सिद्धान्त हैं—मानव मात्र की समानता, अहिन्सा और परिश्रम। भद्र लोग मानते हैं कि सभ्यता के विकास के लिए फुरसत का होना बहुत आवश्यक है। सन्तों का यह मत नहीं। उन का कहना यह नहीं कि फुरसत अथवा आराम बिलकुल नहीं चाहिए; परन्तु उनका मत यह है कि सँस्कृति के विकास के लिए परिश्रम अनिवार्य है और फुरसत में कुछ न कुछ खराबी का डर भी है।

इसका कारण समझना कठिन नहीं। यह सही है कि मनुष्य केवल अन्न पर नहीं जीता परन्तु साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि मनुष्य अन्न के विषय में बेपरवाह भी नहीं रह सकता। उसे अन्न पैदा करना ही पड़ता है। फिर भले वह केवल मनुष्य के ही बल पर अथवा मनुष्य बल के साथ पशुबल अथवा यंत्र-बल का भी उपयोग करे। साथ ही यह भी है कि दूसरे बलों की मदद ली जाए तो भी मनुष्य बल को बिलकुल अनावश्यक नहीं बनाया जा सकता और मनुष्यों के बहुत बड़े भाग को तो अन्न पैदा करने के लिए अपना ही बल काम में लेना अनिवार्य होता हैं।

अब हमारा राजतन्त्र पूँजीबादी सिद्धान्तों पर बना हुआ हो या साम्यवादी सिद्धान्तों पर, जब तक मनुष्यों में यह सँस्कार बढ़ाया जाता है कि परिश्रम एक महान कष्ट है उसकी अनिवार्यता मानव जाति के लिए एक घोर शाप है तब तक एक ओर तो मनुष्य से परिश्रम कराने के लिए कानून कायदे अर्थात् जबरदस्ती अनिवार्य हो जायेगी और दूसरी ओर मनुष्य हमेशा उससे बचने का उपाय करेगा। जब साम्यवाद की यह आदर्श-स्थिति आ जाय कि केवल

दो ही घण्टे काम करने की जरूरत रहे तब भी जब तक परिश्रम को आफत समझने की हमारी मनोवृत्ति बनी रहेगी तब तक उतना काम भी टालने का मनुष्य प्रयत्न करता रहेगा। दूसरे शब्दों में कहें तो तब तक उस सँस्कृति को कायम रखने के लिए हिंसा का आश्रय लेना ही पड़ेगा।

परिश्रम और अहिंसा की एक रुपता

मतलब यह है कि परिश्रम-यन्त्रवत अथवा बुद्धियुक्त और अहिन्सा सगे भाई-बहन हैं। परिश्रम के प्रति अरुचि पैदा करेंगे तो साथ-साथ असमानता और उसे टिकाये रखने वाली हिन्सा की मनोवृत्ति बढ़ाये बिना काम नहीं चलेगा। मनुष्य को आराम की आवश्यकता रहती है; परन्तु आराम का स्थान उसके जीवन में वैसे ही होना चाहिए जैसे हृदय हर बार जब फूलता और सँकुचित होता है तब उसके बीच में कुछ देर आराम कर लेना पड़ता है; परन्तु विचार कीजिए कि कोई हृदय अपने आराम के क्षणों का ही आदर करे, फूलने और सँकुचित होने की क्रिया का तिरस्कार करे तो उसके मालिक की क्या दशा होगी ? इसी प्रकार जो समाज आराम को जीवन का ध्येय बना ले और परिश्रम को अरुचि की दृष्टि से देखे, तो उसे अन्त में मरना ही होगा।

नई तालीम के शैक्षणिक पहलू

वर्धा पद्धति केवल पढ़ाने का एक नया ढ़ँग ही नहीं; परन्तु जीवन की एक नई रचना और एक नया तत्वज्ञान भी है। यह तत्वज्ञान स्वीकार हो तो उसके अनुसार समाज की रचना करने का बुद्धि-पूर्वक प्रयत्न करना चाहिए। इस तत्वज्ञान पर निर्मित शालाएँ भद्र शालाओं से भिन्न प्रकार की हों, यह अनिवार्य है। भद्र जीवन में हिन्सा को स्वीकार किया गया है अर्थात युद्ध को भी जीवन की एक आवश्यकता माना है। इसलिए बचपन से ही बालक में युद्ध के लिए आदर पैदा है। वह युद्ध के और रणवीरों के यशोगान करता है और अन्य देशों में तो मनुष्य को मारने की शिक्षा सब को अनिवार्य रूप में प्राप्त करनी पड़ती है। हमारी दन्त कथाएं और ऐतिहासिक कथाएँ अधिकतर मनुष्य के हाथों हुई मनुष्यों अथवा पशुओं की हत्या का वृत्तान्त ही होती हैं। धार्मिक आस्थाएं भी इससे मुक्त नहीं होती और रूपकात्मक कथाएँ लड़ाई और मारकाट की मनोवृति का आश्रय लेती हैं।

इस प्रकार हमें यह भी एक बा ध्यान में रखनी पड़ेगी और अपने साहित्य से अत्यन्त सावधानी पूर्वक ऐसी कथाएँ निकाल देनी पड़ेंगी। भले ही वे कितनी ही धार्मिक और आकर्षक क्यों न हों और बाल मानस के बारे में हमने जो पूर्वग्रह बना लिए हैं वे छोड़ देने होंगे। जैसे यह मान्यता है कि अमुक आयु का बालक अमुक युग के मनुष्य का प्रतिनिधि है, इसलिए इस दशा की पोषक कहानियाँ कहनी ही चाहिए। सच पूछा जाय तो मनुष्य भले और बुरे भाव तथा सच्चे या झूठे तर्क को प्रकट करने के तरीकों में हजारों कदम आगे बढ़ा होगा, फिर भी

हजारों वर्षों में इन भावों और तर्कों के प्रकार या माप में शायद ही कोई अन्तर पड़ा है । यह नहीं कहा जा सकता कि मनुष्यों के हृदय और बुद्धि का आगे विकास हुआ है ।

इसका एक कारण कदाचित् यह हो कि मनुष्य ने प्राचीन काल से आज तक हिंसा की कला का विकास करने के लिए बुद्धिपूर्वक अत्यन्त परिश्रम किया है; परन्तु अहिंसा की कला का विकास करने के लिए शायद ही कोई परिश्रम उठाया है । प्रत्यक्ष जीवन में तो अहिंसा का उपयोग वह शुरू से ही करता रहा है, परन्तु यह उपयोग उसने वैसे ही किया है जैसे कोई अनपढ़ मजदूर गुरुत्वाकर्षण बलों का सहज उपयोग करता है ।

इसी तरह जब अहिंसा-शक्ति का मानस शास्त्र के साथ संशोधन होगा और तदनुसार मानवजाति के पालन-पोषण की पद्धतियां ढूंढ़ी जायेंगी, तब कदाचित हमें यह भी अनुभव होगा कि बाल-मानस जैसा हम मानते हैं, उससे भिन्न प्रकार का हो सकता है ।

भारत की केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने बेसिक शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली "के रूप में स्वीकार कर लिया है । अब बुनियादी शिक्षा को सफलता पूर्वक-चलाने का उत्तरदायित्व उन शिक्षकों पर है जिन्हें हम राष्ट्र-निर्माता भी कहते हैं । राष्ट्र पिता महात्मागांधी की अनमोल और अन्तिम देन 'बुनियादी शिक्षा' के सिद्धान्तों को पूर्णरूप से समझ कर राष्ट्र के विकास में हमें योग देना है ।

वर्तमान शिक्षा-जगत में बुनियादी शिक्षा के बारे में आज भी अनेक भ्रम पाये जाते हैं । इन्हें दूर करना प्रत्येक बुनियादी शिक्षा के कार्यकर्त्ता का पहिला कर्त्तव्य है ।

बाल-शिक्षण के मौलिक आधार

काशीनाथ त्रिवेदी

(गतांक से आगे)

हमारे विरोधी व्यवहार—

फिर उसका अन्त तभी हो पाता है जब आज का बच्चा कल का बड़ा और परसों का बूढ़ा बन कर जहां से आया वहां लौट जाता है। बीच में इसका अन्त करने की कोई युक्ति आज तक हमारे हाथ में नहीं आयी है।

अभिभावक विवेक से काम लें।

इस प्रकार बाल जीवन सम्बन्धी अपने अज्ञान और अविचार के कारण आज तक हमारे हाथों बच्चों के प्रति जो अन्याय और अत्याचार होता आया है, उसका प्रतिकार करने की स्वयं बच्चों में तो कोई शक्ति नहीं होती है। उनका बचपन पूरी तरह परवश स्थिति में बीतता है। वे न तो संगठित हो सकते हैं और न किसी प्रकार का सामूहिक आन्दोलन ही कर सकते हैं। बच्चों की यह जन्मजात कमजोरी है, जिसके कारण अबतक उनपर होनेवाले अत्याचारों की किसी ने कहीं सुनवाई नहीं की है; किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि बड़ों में जो समझदार, जिम्मेदार, सहानुभूतिशील और बालजीवन के प्रति अनुराग रखनेवाले हैं, वे भी इस विषय में उदासीन रहें और बच्चों को उनके भाग्य के भरोसे छोड़ दें।

बच्चों का जो सच्चा सुख है, उसे नष्ट होने से बचाने का यत्न उन बड़ों को तो करना ही है, जिनके ध्यान में बच्चों की आज की करुणाजनक स्थिति आ गयी है। यही कारण है कि हमारे देश में भी और दुनिया के दूसरे देशों में भी छोटे बच्चों के अधिकारों के लिए बड़ों से जूझने वाले बालसेवकों का एक बड़ा प्रभावशाली दल खड़ा हो गया है। इस दल के सतत् चिन्तन, अन्वेषण, लेखन, प्रचार और आन्दोलन के परिणाम स्वरूप आज सारी दुनिया में बच्चों के पक्ष में एक ऐसी हवा बनती जा रही है, जिसमें बच्चे अपने सहज अधिकारों का पूरा लाभ उठा सकें और आज के अज्ञान पूर्ण व्यवहार से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो सकें।

नगरों से गाँवों की जोर।

हमारा यह बड़ा सौभाग्य है कि विदेशों की भाँति ही हमारे अपने देश में भी बच्चों के जीवन, शिक्षण, विकास और संस्कार के बारे में गहराई से सोचनेवालों का और निष्ठापूर्वक

बाल-जगत की सेवा करने वालों का एक समर्थ दल खड़ा हो गया है, जो आज भी बच्चों के पक्ष में अपनी बात माता-पिताओं, शिक्षकों और घर के तथा समाज के बड़ों तक बराबर पहुँचाता रहता है। यह ठीक है कि सभी प्रान्तों में और देश के सभी हिस्सों में सब जगह बालकों के हित और उत्कर्ष के लिए सतत जागरूक भाव से काम करने वाले आजीवन बाल-सेवकों का दल आज हमें सुलभ नहीं है। इसी लिए बालसेवा की प्रवृत्ति अभी हमारे देश में बहुत प्राथमिक अवस्था में अपना काम कर रही है। इसका आरम्भ नगरों से हुआ है और अब धीरे-धीरे बाल-सेवा का यह काम गाँवों तक फैलने लगा है; किन्तु अभी तक जो काम हुआ है अथवा हो रहा है उसमें भी कई तरह के सुधारों की गुंजाइश है।

बाल-सेवा या दुकानदारी

साधारणतः हर एक सत्कार्य, सद्‌बुद्धि और सेवावृत्ति से ही होता है। उसका मुख्य जनक अपने जीवन-काल में एकनिष्ठ होकर उस कार्य को सेवाभाव से ही करता है; किन्तु बाद में जब वह चीज व्यापक बनती है और एक के हाथ से निकल कर अनेकों के हाथ में पहुँचती है तो उसके रूप और प्रकार में परिवर्तन होता जाता है। सेवक की जैसी रुचि, वृत्ति, भावना और सेवा-शक्ति होती है वैसी ही उसके सेवा-कार्य में मिलती है। सभी सेवक सदा एक-सी ही भावना से अथवा एक-सी ही शक्ति से काम करने की स्थिति में नहीं रहते। इसलिए प्रायः यह होता है कि धीरे-धीरे शुद्ध सेवा-भाव से आरम्भ किये गये कार्यों की परिणिति भी व्यवसाय बुद्धि से होनेवाले कामों में हो जाती है। उस दशा में केवल नाम सेवा का रहता है; परतु काम का रूप तो दुकानदारी का ही बन जाता है।

बाल-सेवा का काम भी इस साधारण नियम का अपवाद नहीं बन सका है। इस क्षेत्र में भी आज एक तरह की दुकानदारी खड़ी हो गयी है और इसके कारण बाल-सेवा का वास्तविक काम रुक गया है। यही नहीं; बल्कि कहीं-कहीं तो व्यवसाय के चक्कर में पड़कर सेवा, कुसेवा का रूप भी धारण कर रही है और उससे बच्चों का पोषण न हो कर शोषण ही अधिक होने लगा है। इस तरह सेवा के पवित्र क्षेत्रमें भी एक भय का स्थान पैदा हो गया है और बालसेवा का काम करने वाले निष्ठावान् लोगों के सामने आज एक बड़ा प्रश्न-चिन्ह खड़ा हो चुका है। इसे भी हम बाल-जीवन की कारुणिकता का ही एक प्रकार कहें, तो अनुचित न होगा। जिस सेवाकार्य का अन्त ऐसा हो, उसमें अवश्य ही कहीं कोई बड़ा दोष रह गया है यह मान कर ही हमें चलना होगा और जिन क्षेत्रों में बाल-सेवा का काम नये सिरे से हो रहा है उन क्षेत्रों में बच्चों की सेवा दुकानदारी का रूप न ले इसकी चिन्ता हममें से हर एक को करनी होगी।

बच्चे के जीवन को घर, समाज और शाला में सुखी बनाने के लिए हमें आरम्भ में कुछ मूलभूत बातें मानकर चलना होगा। हम यह मानकर चलें कि बच्चा भगवान की एक

देन है। वह हमारे घरों में देवदूत बनकर आया है। हम उसके स्वामी नहीं है। बच्चा हमारा सेवक नहीं है, बच्चा कोरा कागज नहीं है, बच्चा मिट्टी का पिण्ड नहीं है; बल्कि अनेक जन्मों के अनेक संस्कार लेकर वह हमारे बीच आता है। उसका अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व होता है। परमेश्वर उसे हमारे बीच एक विशिष्ट कार्य करने के लिए भेजता है। उस कार्य के योग्य और उसके लिए आवश्यक सारी शक्तियाँ भी ईश्वर जन्म के साथ बच्चे को बीजरूप में प्रदान करता है। इस प्रकार अपने जीवन-कार्य का एक विशेष हेतु और एक विशिष्ट पूंजी लेकर बच्चे का जन्म हमारे घर में होता है।

बच्चा, देवदूत होता है।

बच्चे के साथ व्यवहार करते समय घर के बड़ों को हमेशा यह ध्यान रखना है कि बच्चा हमारा नहीं है, वह भगवान का है यानी समाज का है। समाज के व्यापक सेवाकार्य के लिए ही उसका जन्म हुआ है। अत: घर के बड़े-बूढ़ों के नाते हमारा अपना काम तो इतना ही रह जाता है कि इस देवदूत के विकास में और इसके जीवन-कार्य में अपनी तरफ से कोई बाधा न डालें; बल्कि जितना बन सके उतनी सुविधा कर दें और जिस प्रकार एक कुशल माली अपने बाग में लगे हर पौधे को उसकी आवश्यकता के अनुरूप खाद, पानी, आदि देकर अपने ढँग से बढ़ने की अनुकूलता कर दे, उसी तरह हम भी अपने घरों में बच्चों के लिए ऐसी हवा बना दें, जिसमें उनके प्राणों का पोषण सहजभाव से हो सके और वे अपने देव-निर्धारित जीवनकार्य को सिद्ध करने की शक्ति का अपने में विकास कर सकें।

यदि इस वृत्ति से हम बच्चों को अपने बीच रखते हैं और उसकी आवश्यक चिन्ता करते हैं तो न केवल बच्चों का, बल्कि हमारा भी सुन्दर विकास होता है और अध्यात्म की दृष्टि से हम एक ऊँची जगह पहुँचने की स्थिति में हो जाते हैं। आज बच्चों का बड़ों के साथ जो सम्बन्ध है वह भौतिक अधिक, और आध्यात्मिक बहुत कम है। माता-पिता केवल उसके शरीर के भरण-पोषण का खयाल रखते हैं। बच्चों की अपनी भी कोई आध्यात्मिक भूख है, इसका विचार प्राय: घर के बड़ों के सामने नहीं रहता है इसलिए प्रेम का जो अन्त दोनों के बीच बहुत सुदृढ़ रहना चाहिए वह वैसा नहीं रह पाता और बहुत छोटे और हलके झोंकों से टूटता नजर आता है। इस स्थिति को बदलने अथवा सँभालने की बड़ी आवश्यकता है।

बच्चों का स्वाभाविक विकास कैसे हो ?

जिस प्रकार बच्बा अपना एक स्वतन्त्र जीवन-कार्य लेकर हमारे बीच आता है उसी प्रकार अपने उस जीवन-कार्य की सिद्धि के लिए उसको आरम्भ से ही घर में कुछ बुनियादी बातों की जरूरत रहती है। जानकारों का कहना है कि बच्चा अपने लिए स्वतन्त्रता चाहता

है, स्वावलम्बन चाहता है और अपनी रुचि, मर्जी या स्फूर्ति से काम करने की अनुकूलता चाहता है। बचपन से ही उसे इन तीन बातों की भूख रहती है। यदि घर के बड़े-बूढ़े उसकी सहज पहचान कर उसे अपने ढँग से बढ़ने, काम करने और सोचने का मौका दें तो उससे बच्चे का जितना अच्छा और मजबूत विकास होगा उतना दूसरे किसी प्रकार से नहीं हो सकेगा।

आज हमारे घरों में बच्चों को काम करने की स्वतन्त्रता नहीं होती। हम में से बहुतों को इस बात का भान भी नहीं है कि बच्चों को बचपन में स्वतन्त्रता की बड़ी तगड़ी भूख रहती है। हम बच्चे के मन की बारीक भावनाओं को जान नहीं पाते। जानने की कोशिश भी नहीं करते। जानना जरूरी है, इसका हमें ध्यान भी नहीं रहता इसलिए अनजाने ही हम बालकों के साथ ऐसा बरताव करते हैं, जो उनको सुख पहुँचाने के बदले दुखी बनाता है; उन की सहज बाढ़ में रुकावट पैदा करता है और उन के खिले हुए दिलों को मुरझा देता है।

बच्चा तो भगवान के घर से भगवान की कई विभूतियाँ लेकर हमारे घर में आता है। उसे काम करना अच्छा लगता है। सब से हिल-मिल कर रहना अच्छा लगता है। अपने भरोसे जीना अच्छा लगता है। वह स्वभाव से दयालु होता है, क्षमा करता है। उसके मन में किसी के लिए कोई भेद-भाव नहीं होता। वह अपने पराये सब के साथ एक-सा व्यवहार करता है। ऊँच नीच, अमीर-गरीब, छोटा-बड़ा, मालिक-नौकर आदि के जो कई भेद आज बड़ों की नासमझी से समाज में मौजूद हैं, बच्चों के मन पर शुरू में उनका कोई असर नहीं होता।

समानता के अँखुए न टूटें

बच्चे सब को अपना समझते हैं और सब के साथ प्रेम से रहना चाहते हैं। यह उन का सहज स्वभाव ही होता है। यदि हम अपनी तरफ से उन पर पाबन्दी न लगायें, और ऊपर बताये भेदों का पाठ न पढायें, तो वे अपनी राजी-मर्जी से किसी से कोई भेद या फर्क करना पसन्द नहीं करेंगे। बच्चे तो पशुओं, पक्षियों और पेड़-पौधों से भी स्नेह का नाता जोड़ने के लिए उतावले रहते हैं। इस में उनकी सहज रुचि रहती है। जन्म से वे निर्भय और निर्मल होते हैं। उनके मन में छल, कपट, और राग-द्वेष की बातें तो आगे चल कर बड़ों के असर से पैदा होती हैं। बच्चा अपनी तरफ से किसी को दुश्मन नहीं मानता।

वह तो सांप और बिच्छू जैसे जहरीले जानवरों से भी खेलने के लिए तैयार रहता है। उसे उनका भी कोई डर नहीं। डर बाद में पैदा होता है। इस तरह जो उँचे और बहुत जरूरी गुण बच्चा अपने साथ भगवान के घर से लाया होता है, यदि अपने घरों में वह समझदारी के साथ उन गुणों के विकास की अच्छी व्यवस्था करके रखे तो हमारे बच्चे आज से कहीं ज्यादा सद्गुणी, सदाचारी और सज्जन बन सकते हैं और इस प्रकार वे अपने

जमाने की और अपने लोगों की बहुत बड़ी सेवा कर सकते हैं। इस खयाल से यदि हमारे घरों में बच्चों को जरूरी स्वतन्त्रता दी जाय तो वह गुण ही करेगी, अवगुण नहीं किन्तु आज वह स्वतन्त्रता नहीं है। बात-बात पर उन्हें दबाया जाता है, डराया जाता है, मारा-पीटा जाता है और अच्छे काम करने से रोका भी जाता है।

बचपन में बालक अपनी सहज रुचि के कारण घर के हर छोटे-मोटे काम को करने के लिए बहुत उत्सुक रहता है। घर के बड़े लोग सुबह से शाम तक जो कुछ भी करते कराते हैं, बालक उन सब को बहुत ध्यान से देखता है और खुद भी ठीक उसी तरह करने की इच्छा रखता है, करने को दौड़ता भी है; पर हम अपनी अड़चन का, समय का या इस तरह की और बातों का ख्याल करके बच्चों को इस उम्र में वे काम करने नहीं देते। उन्हें पानी भरने से रोक देते हैं, झाड़ू लगाने से रोक देते हैं, बरतन माँजने से रोक देते हैं, कपड़े धोने से रोक देते हैं, अनाज साफ करने से, साग सब्जी काटने से और इसी तरह के दूसरे कई कामों से हम उनको बराबर रोकते रहते हैं। इस तरह की रोक-टोक का नतीजा यह होता है कि धीरे-धीरे बालक का मन मुरझा जाता है। काम करने की उसकी सहज वृत्ति घटती जाती है। धीरे-धीरे वह घर के कामों के प्रति उदासीन हो जाता है। अकेला कहीं एक तरफ बैठा रहता है और अपने मन की तरंगों में उलझा रहता है।

बच्चों को निकम्मा न बनाएँ

बच्चे के मन और शरीर दोनों पर हमारे इस व्यवहार का भारी असर पड़ता है और बच्चा अकारण ही भरे-पूरे घर में अकेला पड़ जाता है, दुखी हो जाता है। हम अपनी व्यस्तता के कारण उसमें होनेवाले परिवर्तन की ओर ध्यान नहीं दे पाते। इसके कारणों की खोज करने का ख्याल भी हमारे मन में नहीं उठता। कोई कभी भी हमारे ध्यान में नहीं आती। काम की रुचि और शक्ति रखने वाले बालक को अपने ऐसे व्यवहार से निकम्मा बना कर ही हम नहीं रुकते; बल्कि जो बालक हमारी ही भूल के कारण निकम्मा बना है, आगे चल कर उसे हम उसके निकम्मेपन के लिए बहुत बुरा-भला कहते हैं और इस तरह उसके साथ अधिक अन्याय करते हैं।

स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता को समझ लें

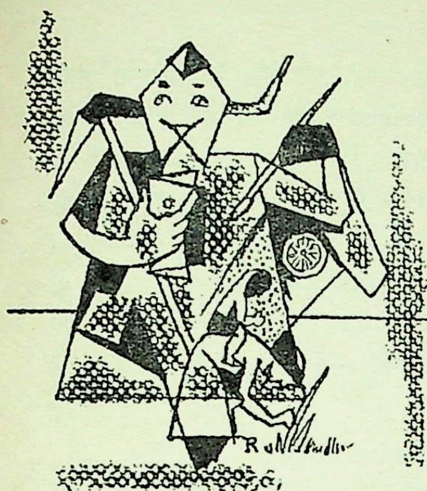
कहने का मतलब यह है कि अपनी नासमझी से ही हम अपने बच्चों को दुखी बनाते हैं और उनको ठेठ बचपन से पराधीन बना कर स्वाधीनता के सुख से और उसके लाभों से दूर रखते हैं। इससे बच्चों की बेशुमार हानि होती है। अतएव माता-पिता के नाते हमें इस सम्बन्ध में बहुत सावधान रहना है और घर में बच्चे को काम करने की पूरी स्वतन्त्रता

मिले ऐसी व्यवस्था करनी है। जिस बालक को बचपन से घर के सब व्यवहारों में स्वतन्त्रता का सहज लाभ मिलेगा, वह अपने समय का एक भाग्यशाली और शक्तिशाली बालक होगा।

उसका मतलब यह नहीं कि स्वतन्त्रता के नाम पर हम घरों में बालकों को मनमानी करने का, जिद्दी बनने का, तोड़-फोड़ और नुकसान करने का मौका दें। स्वतन्त्रता में इन बुराइयों के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। सच्ची स्वतन्त्रता, स्वच्छन्दता से बिलकुल अलग चीज है। उसमें विवेक, विचार, संयम, अनुशासन आदि भी अपना-अपना काम बराबर करते रहते हैं। इसलिए ऐसी स्वतन्त्रता किसी के मार्ग में, सुख में, हित में अथवा उत्कर्ष में कभी रुकावट नहीं डालती। अगर इस अर्थ में स्वतन्त्रता को समझ कर घरों में विचार-पूर्वक अमल हो तो वह न केवल बच्चों के लिऐ, बल्कि पूरे परिवार के लिऐ हितकारी और सुखकारी बन सकता है।

हम भूल बैठे हैं कि पुस्तकें शिक्षा की सहायिका मात्र हैं। हमारी मान्यता ही बदल गयी है। हमने मान लिया है कि पुस्तकीय शिक्षण ही शिक्षा का एक मात्र मार्ग है। आवश्यकता इस बात की है कि हम बच्चों के हृदय में इस बात का लेश मात्र भी संस्कार न पड़ने दें कि पुस्तकों की पढ़ाई ही शिक्षा है। मन की यह स्वाभाविक शक्ति है कि वह अपने स्वाभाविक उद्यम से ज्ञान को ले सकता है। बच्चे जो कुछ सीखेंगे, प्रयोग करके ही सीखेंगे।

—कवीन्द्र रवीन्द्र



हमारी शिक्षा

आचार्य कृपालानी

(गतांक से आगे)

मार्क्सवाद का पक्षपात

सत्ताधारी लोग स्वयं आर्थिक सुविधाओं का उपयोग न भी करते हों; पर उनका पद उन्हें ऐसी सुविधाएँ देता है, जिनका आर्थिक मूल्य है और तानाशाही पर तो कोई रुकावट है ही नहीं। आज रूस में श्रमिकों और किसानों की आमदनी के साथ नौकरशाही व्यवस्थापकों, विशेषज्ञों आदि की आमदनी की तुलना की जाय तो बड़ी विषमता नजर आयेगी। लोकतन्त्र में सत्ता पर कई प्रकार की रुकावटें हैं, लेकिन एक तानाशाही में ये सब खत्म कर दिये जाते हैं। रह जाती है केवल सत्ताधारियों की मर्जी।

राजनीतिक व्यवस्था में कुछ पदों का महत्व दूसरों से अधिक हमेशा होगा; लेकिन प्रजातन्त्र के नैतिक और संगठन सम्बन्धी नियन्त्रण हट जाते हैं तो फिर निरंकुश सत्ता के दम्भ और दमन के सिवा कुछ नहीं रह जाता। पहले के जमाने के राजा और धनी लोग अपने अधिकारों का उपयोग कुछ सीमाओं के भीतर करते थे। जीवन के कई क्षेत्रों में वे काफी स्वतन्त्रता देते थे। साम्यवाद ने, जैसा कुछ आज उसका विकास हुआ है, स्वायत्तता के उन सारे क्षेत्रों को खत्म कर दिया है। स्वतन्त्रता की दृष्टि से देखा जाय तो इसी पाबन्दी के परिणाम स्वरूप, जो स्थिति निर्माण हुई है यह उन मनमाने राजाओं से भी हीनतर है, जो अपने अन्दर दैवी शक्ति को मानते थे। प्रजातन्त्र की अपेक्षा तो हीनतम ही है, भले ही प्रजातन्त्र पूंजीवाद के कारण कितना भी दूषित हो।

आधुनिक प्रजातन्त्र का आविर्भाव करीब-करीब उसी समय हुआ जब विज्ञान प्रगति करने लगा था और जिसके फलस्वरूप नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का बल कुछ घट रहा था। नैतिक जिम्मेवारी से अलग होकर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य एक प्रकार के अव्यवस्था-तत्व का कारण बना। उसी समय औद्योगिक क्रान्ति ने मानव-मानव के बीच पैसे और कानूनी समझौते को घुसाया, चाहे वह समझौता किसी भी तरह हुआ हो। अगर कमजोर की दुर्दशा हुई तो यह कहा गया कि यह तो उस वैज्ञानिक सिद्धान्त की विजय है, जो कहता है कि समर्थ ही जीने का हकदार है। यह भी कहा गया कि यदि प्रत्येक व्यक्ति पूरे मन से अपने स्वार्थ का ध्यान रखे तो ऐसा अनेक लोगों का एकत्र स्वार्थ किसी कीमिया के जरिये परमार्थ और मानवता में बदल जायगा।

मार्क्स ने औद्योगिक क्रान्ति के कुछ भयानक मानवीय परिणामों और दुर्बलों के निर्मम शोषण का समर्थन करनेवाले सिद्धान्तों का भण्डाफोड़ किया। फिर भी मार्क्सवाद ने उस व्यक्ति को कोई महत्व नहीं दिया और उसे आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों का सब कुछ माना गया। अब वह आध्यात्मिक इकाई नहीं रह गया, जो अपने आप में साध्य नहीं होता है।

समन्वय

अभी हाल में जब लोकतन्त्र को फासिस्ट और साम्यवादी तानाशाही से भारी खतरा नजर आने लगा तब इसके समर्थकों को यह प्रतीत होने लगा कि लोकतन्त्र केवल एक राजनीतिक योजना ही नहीं है; बल्कि वह महान नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धान्तों के आधार पर खड़ा है। अब यह अनुभव किया जाने लगा कि लोकतन्त्र के नैतिक सिद्धान्तों का त्याग करने का अर्थ होगा—मानवता को पीछे ले जाना। यह भी महसूस किया जाने लगा है कि केवल लोकतन्त्र के ही नहीं, वरन् समाजवाद के सिद्धान्त भी मूलतः नैतिक ही हैं, जो न्याय, समता, और ईमानदारी पर आधारित हैं। सामाजिक स्तर पर ये दोनों मानव की प्रतिष्ठा पर बल देते हैं। यदि इन सिद्धान्तों को सारहीन ढाँचा मात्र नहीं बना रहना है तो इन्हें जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में लागू करना होगा।

गांधी जी का जीवन-दर्शन इसी समग्र ध्येय का बना हुआ है। गांधीजी का विश्वास है कि मानवता का उद्‌गम और उसकी मंजिल दोनों नैतिक हैं। वह मंजिल प्रत्येक स्त्री-पुरुष को नैतिक समाज के अन्दर तय करनी है। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को तथा आन्तरिक और बाह्य जीवन को सत्य, अहिंसा, न्याय और ईमानदारी के सिद्धान्तों के अनुसार चलना चाहिए। इसे सम्भव बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हमारे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में भी वे ही नैतिक सिद्धान्त लागू हों और हमारे ध्येय जितने उन्नत हों हमारे साधन भी उतने ही परिशुद्ध हों। कोई सारा विश्व जीत ले; पर

आत्मा खो दे, तो वह जैसा निष्फल है उसी प्रकार किसी देश के लिए भी यह लाभदायी नहीं होगा कि वह सारा संसार तो पा जाय; पर अपनी आत्मा खो दे।

हर हालत में समाज नैतिक तभी होगा जब इसके सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संगठन और संस्थाएं उपयुक्त हों। इसी व्यवस्था की स्थापना के लिए गांधीजी का प्रयत्न था कि लोकतन्त्र और समाजवाद दोनों के नैतिक और भौतिक गुण जोड़े जायँ। मार्क्स का समाजवाद चूंकि केन्द्रीयकरण पर जोर देता है और अपने साधनों में नैतिक सिद्धान्तों का त्याग कर देता है इसलिए वह भौतिक सुविधाओं की भूल मिटाने में चाहे जितना सफल क्यों न हो, फिर भी व्यक्ति को कुचलने वाला ही है। भूख से पीड़ित मानवता, हो सकता है, नैतिक साध्यों की परवाह न करे और किसी भी मूल्य पर आर्थिक समृद्धि को प्राप्त करने के आश्वासन से सन्तुष्ट हो जाय; परन्तु केवल रोटी से न व्यक्ति जी सकता है न देश। यह भी सही है कि ये रोटी के बिना भी नहीं जी सकते; लेकिन उसके साथ कुछ दूसरे ऊंचे लक्ष्य भी ऐसे हों, जिनके लिए कल्याण के भौतिक साधनों का त्याग करना पड़े।

गांधीजी ने कुटीर और ग्रामीण उद्योगों का तथा विकेन्द्रित व्यवसाय और कृषि का जो प्रतिपादन किया वह साम्यवादी या पूंजीवादी व्यवस्था के केन्द्रीकरण की अति के इलाज के रूप में ही था। इसीलिए गांधीजी की दृष्टि से विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त एक नैतिक सिद्धान्त है। इसमें यह भी सम्भव होगा कि व्यक्ति अपनी इच्छा को बड़े पैमाने पर कार्यान्वित कर सके। इससे ऐसा एक बाहरी वातावरण निर्माण होता है, जो व्यक्ति को अपनी स्वतन्त्र राय कायम करने और व्यक्त करने के लिए अनुकूल है। भौतिक वस्तुओं की समृद्धि और समान वितरण की रंगीन तस्वीर प्रस्तुत करनेवाले के प्रलोभनों को गांधीजी ठुकरा देते हैं। वह समृद्धि व्यक्ति स्वतन्त्रता और व्यक्तित्व-नाश की क्षति पूर्ति नहीं कर सकती। गांधी जी पक्के व्यावहारिक थे। अतः ऐसे केन्द्रित उद्योगों का उन्होंने विरोध नहीं किया, जो आज की सभ्यता की दृष्टि से आवश्यक हैं। साथ ही वे इतने नैतिक और मूलतः मानवतावादी थे कि यन्त्र को स्वतन्त्र व्यक्ति पर हावी होने नहीं दे सकते थे। जब कभी केन्द्रित उत्पादन की आवश्यकता पड़ जाय तो उनके अनुसार उसका नियन्त्रण समाज के हाथों में होना चाहिए।

राष्ट्र के अन्दर और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राजनीतिक जीवन सत्य और अहिंसा के तत्व पर चलना चाहिए। अस्त्र-शस्त्रों और कूटनीति को स्थान नहीं रहना चाहिए। सत्ताधारियों को अपनी जनता का सेवक बनना चाहिए। उन स्थायी सत्ताधारियों को आर्थिक-जीवन की जो सुविधाएँ मिलें, उनका साधारण समाज की उपलब्ध सुविधाओं से मेल होना चाहिए। कोई काम या पेशा ऊंचा या नीचा नहीं माना जाना चाहिए, बशर्ते कि वह अपना सामाजिक हेतु सिद्ध कर सके। प्रत्येक कारीगर, वह चाहे जितना तुच्छ हो, पारिश्रमिक मात्र का हकदार नहीं है, बल्कि आदरणीय भी है।

गांधीजी ने राजनीति और अर्थनीति के आध्यात्मीकरण का जो प्रयत्न किया, यह उसका संक्षिप्त विवेचन है। उसके व्यावहारिक कार्यक्रमों के आधार सत्य और अहिंसा रहे हैं और उनका हेतु नैतिक मानव को एक नैतिक समाज प्राप्त करा देना रहा है। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन सम्बन्धी गांधीजी का दर्शन इतना व्यापक है कि उसमें राजनीतिक लोक-तन्त्र और आर्थिक समाजवाद दोनों की नैतिक, भौतिक और संगठन सम्बन्धी सारी उपाधियां समाविष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार उसमें अर्वाचीन मानव के इतिहास की विभिन्न धाराएँ संकलित हो जाती हैं। वह ऐसी अहिंसक क्रान्ति और नव-समाज-रचना के लिए क्रियाशील हैं, जहां राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अन्याय और शोषण नहीं होगा। उसे ही गांधीजी स्वराज्य, रामराज्य, धरती पर ईश्वर का राज्य आदि शब्दों में व्यक्त करते थे।

गांधीजी ने शिक्षण की जो नयी पद्धति दी, उसका कार्य यही है कि वह व्यक्ति और समाज दोनों को एक नयी क्रान्ति के सिद्धान्तों के प्रकाश में शिक्षित करे। उन्होने स्वाभाविक और वैज्ञानिक दोनों दृष्टियों से सही शिक्षा-पद्धति दी और साथ ही व्यक्ति तथा समाज के सामने अमूल्य और उदात्त ध्येय भी प्रस्तुत किया। इसी प्रकाश में नयी तालीम अथवा बुनियादी शिक्षा की योजना पर विचार होना चाहिए।

जो शिक्षा हमें निर्बलों को सताकर रक्त पीने के लिए तैयार थे, जो हमें धरती और धन का गुलाम बनाये, जो हमें भोगविलास में डुबाये, जो हमें दूसरों का रक्त पीकर मोटा होने का इच्छुक बनाये, वह शिक्षा नहीं; भ्रष्टता है।

—प्रेमचन्द

व्यवस्था विभाग

विषय

बुनियादी शिक्षक क्रमशः शिक्षकों और अभिभावकों के लिये दिशा-दर्शन मात्र है। इसका उद्देश्य है—समय, समय पर होने वाले शैक्षणिक परिवर्तनों की जानकारी देना, शिक्षा में फैली हुई भ्रान्तियों को दूर करना और शिक्षा के लक्ष्य एवं कार्यक्रम में स्थायित्व लाने का सतत प्रयास करना।

समय

पत्रिका का प्रत्येक अंक महीने की पहली तारीख को निकलता है। इसके लिए लेखन सामग्री हर महीने की १५वीं तारीख तक हमारे कार्यालय में 'सम्पादक बुनियादी शिक्षक' के नाम आ जाना चाहिए।

सदस्यता शुल्क

पत्रिका का वार्षिक शुल्क पाँच रुपये मात्र है, जो अग्रिम लिया जाता है। पत्रिका वी० पी० पी० से नहीं भेजी जाती। विशेष जानकारी के लिए कार्यालय को लिखें।

व्यवस्थापक :

बुनियादी-शिक्षक

लखनऊ

प्रकाशक

बुनियादी साहित्य प्रकाशन

लखनऊ

मुद्रक

साथी प्रेस

लखनऊ

सम्पादक मण्डल

गोरखनाथ चौबे एम० ए०

द्वारिकासिंह एम० ए०

डा० सीताराम जायसवाल

रुद्रभान : शिरीष

चित्रकार

आर० के० शर्मा 'अशेष'



चन्दा - दर

वार्षिक : ५ रुपये
मासिक : ५० नये पैसे

जिन्होंने मानव पर शासन करने की कला का अध्ययन किया है, उन्हें यह विश्वास हो गया है कि बच्चों की शिक्षा पर ही राष्ट्रों का भाग्य आधारित है और यह काम कुशल शिक्षक ही कर सकते हैं : इसलिए किसी भी राष्ट्र का प्रमुख कार्य अध्यापकों को समुचित प्रशिक्षण देना, होना चाहिए।

—अरस्तू